पतितोद्धार



लेखक—

श्रीयुत जंगबहादुरसिंह।

सुलभ 'हिन्दी-पुस्तक-माला' संख्या १८



पतितोद्धार



(उपन्यास)

लेखक—

श्रीयुत जंगबहादुर सिंह।



प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय,

बनारस सिटी।

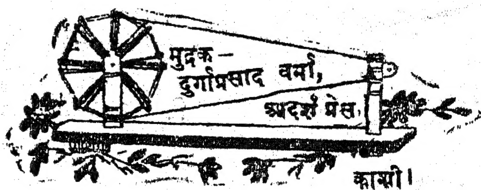


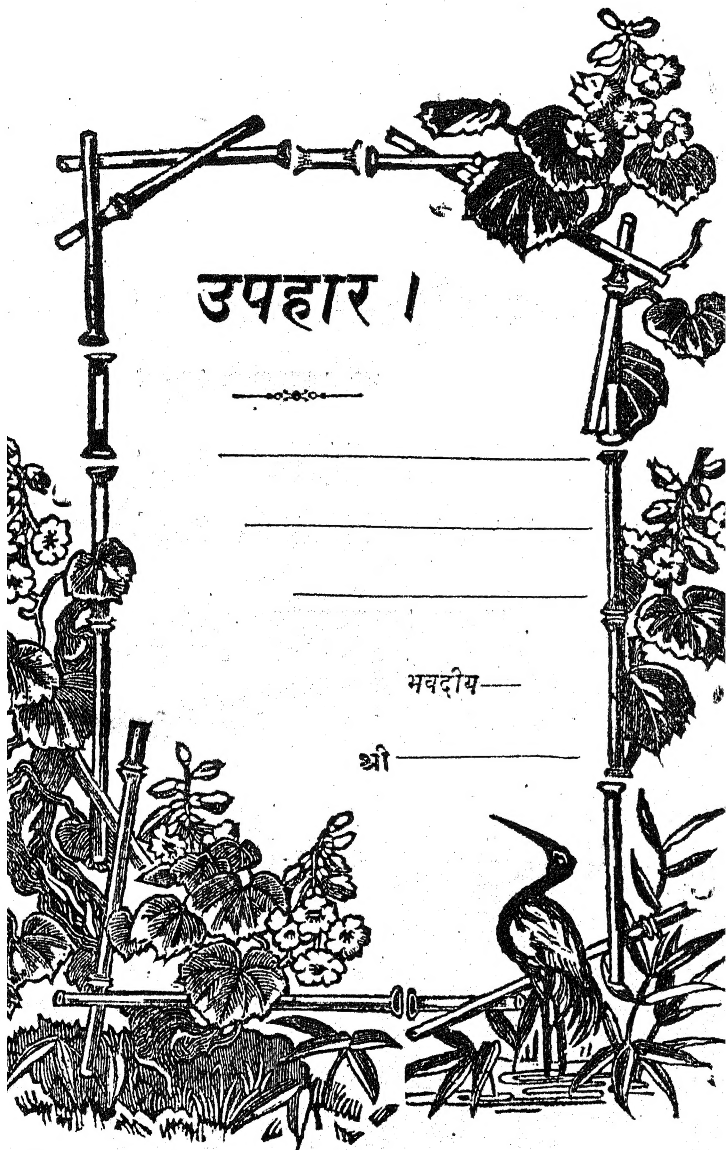
वि० १९७९

प्रथमबार] [मूल्य १=)

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय,
बनारस सिटी।






उपहार ।
भवदीय—
श्री

'हिन्दी पुस्तक-माला' का

१९ वाँ अंक

सच्चे मित्र के उचित कर्त्तव्य का दिग्दर्शक

सुरेन्द्र

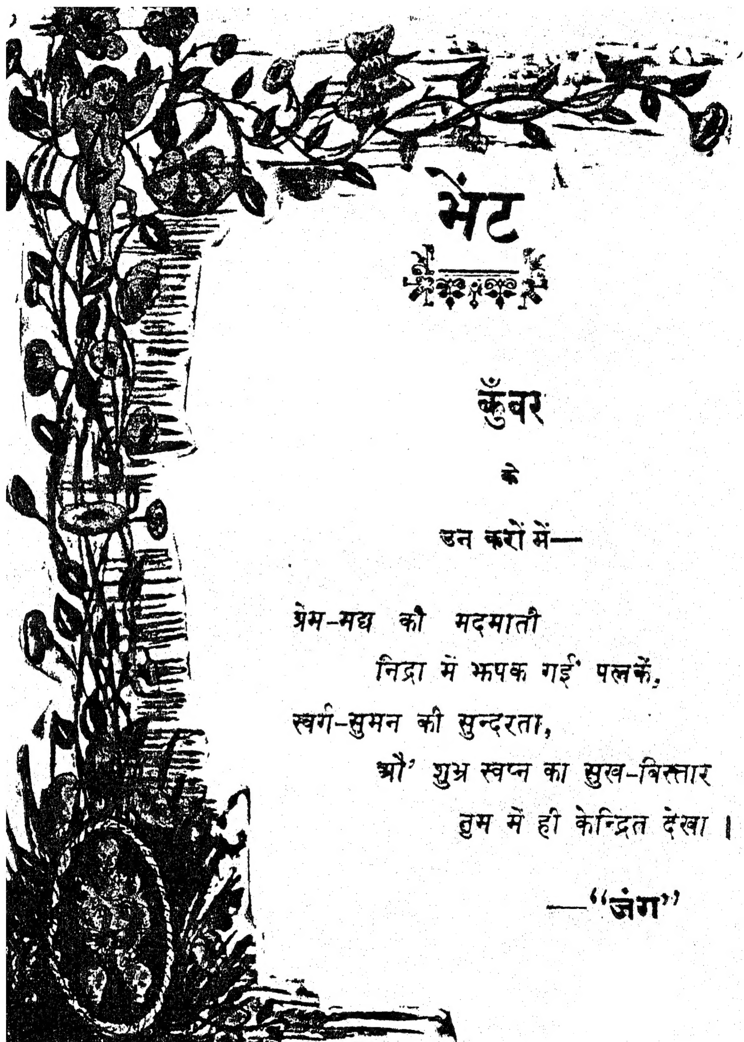
श्रीयुत नाथूराम शालिग्राम (गोभुज) लिखित

शीघ्रही प्रकाशित होगा ।



कुँवर खुशवक्तराय, खेरी।

आदर्श प्रेस, काशी।



भेंट

कुँवर

के

उन करों में—

प्रेम-मद्य की मदमाती
निद्रा में झपक गईं पलकें,
स्वर्ग-सुमन की सुन्दरता,
औ' शुभ्र स्वप्न का सुख-विस्तार
तुम में ही केन्द्रित देखा।

—"जंग"

भूमिका।





दिल की बात कहता हूँ। 'पतितोद्धार' में चाहे चरित्र-चित्रण और प्रकृति-निरीक्षण उतना सुन्दर न बन पड़ा हो, फिर भी आशा है कि सहृदय पाठकों का, घड़ी भर के लिए इससे मनोरंजन अवश्य हो जायगा। १५ अप्रेल, १९२२ को मैंने यह पुस्तक लिखनी आरम्भ की थी। उसी मास की २७ तारीख को यह समाप्त हो गई। उमंग उठी, उपन्यास लिख डाला। प्रथम प्रयास है, त्रुटियाँ अवश्य रह गई होंगी। उनके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

उपन्यास-लेखन-कला बड़ी महत्व की चीज़ हैं। साहित्य में इसका दर्जा बहुत ऊँचा है। इसका जादू सिर पर चढ़ कर बोलता है। परन्तु शर्त यह है कि उपन्यासकार सिद्ध-हस्त हो। उसके रचना-वैचित्र्य को देख कर पाठक विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। अनायास ही वह प्रशंसा के पुल बाँध देता है। सच पूछिए तो ऐसे ही लेखकों को उपन्यास लिखने का अधिकार है। मेरी तो यह अनधिकार चेष्टा है। परन्तु छोटे मोटे लेखकों का दुस्साहस ही भावी धुरंधर लेखकों का पथ परिष्कृत करता है। अतएव मैं क्षम्य हूँ।

दो बातें अपने विषय में भी कह दूँगा। कुछ मेरे मित्रों ने भी मुझे बढ़ावा दिया। वंशी तो मुझे प्रारम्भ से ही प्रोत्सा-हन देते आए हैं। मेरी साधारण रचना को भी वे बड़ी

चाव से सुनते और उसकी प्रशंसा करते। जितना उन्हें साहित्य से प्रेम है उतना ही स्वदेश से भी। आज वे जेल में हैं। देश-प्रेम से उन्मत्त हृदय के लिए 'स्वतंत्रता-मंदिर' के बाहर स्थान कहाँ? ऐसे विशाल हृदय के प्रेम और प्रशंसा को मैं अमूल्य समझता हूँ। हर्षोत्फुल्ल होकर मैं उनकी सरल स्तुति को हृदय में स्थान देता था। मेरा हौसला बढ़ने लगा। प्रयाग में आकर मैं कायस्थ पाठशाला कालिज में पढ़ने लगा था। यहाँ साहित्य-सेवी-युवकों की कमी नहीं थी। एक एक करके सब से जान पहिचान हो गई। इन्नू, गिरीश, आनन्दी, जगदम्बा, विक्रम सभी से मैं परिचित हो गया। यह बातें निरी मेरे सम्बन्ध की हैं। पाठक आज मेरे इन मित्रों का पूरा नाम जान कर क्या करेंगे? कुछ दिनों में आपही उनके नाम प्रकट हो जायँगे। मेरा तो विश्वास है कि कभी ये लोग हिन्दी-साहित्य-संसार में खूब चमकेंगे।

इनके प्रोत्साहन से मैं और भी ढीठ हो गया। साहित्य-क्षेत्र में मेरी क्षुद्र क्रिया-शीलता कुछ बढ़ सी गई। मेरी बड़ी लालसा थी कि सन् १९१९ की पंजाब की घटनाओं को लेकर एक उपन्यास लिखूँ। आख़िर लिखा, कैसा हुआ यह पाठक जानें।

प्रयाग
मई १९२२. } जंगबहादुर सिंह।

पतितोद्धार

पहला परिच्छेद ।

सन् १९१४ के शीतकाल की बात है। उस दिन गुजरानवाला के स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था, परन्तु फिर भी चारों ओर प्रगाढ़ अंधकार छाया हुआ था। यात्री बड़ी उत्कंठा से गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ लोग प्लेट-फार्म के किनारे खड़े होकर तनिक आगे को झुककर बड़ी दूर तक दृष्टि दौड़ाते थे। गाड़ी का कहीं दूर तक पता नहीं था, निदान कुढ़ कर लौट आते थे।

धीरे धीरे आधा घंटा बीत गया। वायु के झोंको के साथ वृष्टि के कुछ हल्के छींटे आए। इसी समय घंटी बजी। दो ही मिनट के बाद गाड़ी चीत्कार करती हुई प्लेटफार्म पर आकर खड़ी हो गई। कोई सिर पर गठरी रक्खे हुए, कोई हाथ में बेग लटकाये, दरवाजा खोल कर गाड़ी के भीतर



घुसने लगा। इतना शोर गुल मच रहा था कि कान नहीं दिये जाते थे। कोई कहता था कि "इसमें बिलकुल जगह नहीं है। क्या सब इसी में भर जाओगे। आगे बहुत गाड़ियाँ खाली पड़ी हुई हैं।" परन्तु वहाँ सुनता कौन था? द्वार खुला नहीं कि एक दो तीन चार......बराबर यात्री घुसते ही आते थे। चाहे जितना समझाओ खुशामद करो, डाँटो फटकारो, सब व्यर्थ? अगर आगन्तुक सीधा हुआ तो वह कहता था, "बाबू जी, खफा न होइए, आपको तनिक भी कष्ट न होगा। मुझे दो ही स्टेशन जाना है। खड़ा खड़ा चला चलूँगा।" परन्तु यदि कहीं वह अक्खड़ हुआ तो लाल लाल आँखें निकाल कर भृकुटी तानकर बड़े क्रोध से कहता था,–"क्या तुम्हींने किराया दिया है? मैंने नहीं दिया है? देखें तो कैसे नहीं बैठने दोगे।"

परन्तु इंजन के बगल वाले डिब्बे के निकट जाते हुए बड़े बड़े हेकड़ों की जान सूखती थी। दो लम्बे चौड़े मनुष्य पञ्जाबी पैजामा पहने हाथमें बेंत लिए गाड़ीके दर्वाजोंका सहारा दिए बड़े आराम से खड़े थे। जो काले रंग का कोट पहने हुए था, वह बीड़ी पी रहा था और उसका दूसरा साथी बेंत से अपने जूते को पीट रहा था। डिब्बे के भीतर बीस बाईस मनुष्य कोई फटा पुराना कम्मल ओढ़े, कोई जगह जगह से रुई निकली हुई रजाई लपेटे हुए बैठे थे। बहुत से यात्री उन दोनों दीर्घ-काय मनुष्यों के धक्के खाकर मन ही मन बड़बड़ाते हुए लौट चुके थे। जो दो चार मुसाफिर हाँफते हुए गाड़ी छूटते समय इधर आ निकले उनको भी चलते चलाते प्रसाद मिल गया। बेंत उठा कर धक्का देते हुए उस भीमकाय व्यक्ति ने कहा,–

"देखता नहीं है, यह गाड़ी रिज़र्वड है ।" बिचारे को यही मालूम होता तो वह उधर क्यों आता ? क्या उसे कुछ धक्के खाने का शौक था ?

इस समय तक प्लेटफार्म की भीड़ बिल्कुल छट गई । असबाब ढोनेवाले ठेलों की खड़खड़ाहट अब भी सुनाई देती थी । बीच बीच में मेघों का घोर गर्जन हृदय को हिला देता था । उस डिब्बे में कहने को तो बीस बाईस मनुष्य थे, परन्तु ऐसा मालूम पड़ता था मानों वह डिब्बा बिल्कुल खाली पड़ा है । सब जहाँ के तहाँ चुपचाप सिकुड़े हुए बैठे थे,इसमें खिड़की के पास सब से पिछली पटरी पर बैठा हुआ मनुष्य अत्यन्त दुखित जान पड़ता था । उसके मुख पर उदासी छायी हुई थी और रह रह कर उसकी आँखें डबडबा आती थीं । वह बार बार मुंह बिचकाता था । बड़ा प्रयत्न करके वह अपनी रुलाई रोके हुए था । वह उचक उचक कर खिड़की के बाहर झाँकता था, फिर भी उसे चैन नहीं पड़ती थी ।

आखिर इंजन ने सीटी दी और खड़खड़ करती हुई गाड़ी चलने लगी । वह दोनों व्यक्ति जो बाहर खड़े थे गाड़ी में आकर बैठ गए ।

उनमें से एक ने कहा,—"भाई हैदर, एक बीड़ी मुझे भी देना ।"

हैदर ने जेब से बीड़ियों का बंडल निकाल कर एक बीड़ी अपने साथी को देते हुए पूछा—"क्या मैचिस भी चाहिए ?"

उसने उत्तर दिया,—"नहीं, मेरे पास है रहने दो ।" बीड़ी

उदारता प्रकाश करते हुए हैदर ने और सब से पूछा;—"बीड़ी तो नहीं पीयेगा ?" दूसरे खाने में बैठे हुए दो चार मनुष्यों ने कुछ इच्छा प्रकट की। हैदर अपने स्थान से उठकर दूसरी ओर झुक कर उनको बीड़ी देने लगा। इसी समय गाड़ी का दरवाजा खोल कर कोई धड़ाम से कूद पड़ा। यह वही व्यक्ति था जो सब से अधिक दुखी दिखाई पड़ता था। हैदर ने एक ही क्षण में निर्धारित कर लिया कि उसे क्या करना चाहिए। गाड़ी अभी डिस्टैन्ट सिगनेल के निकट भी नहीं पहुँची थी, वह बड़ी धीमी गति से चल रही थी। हैदर भी और लोगों की ओर संकेत करके अपने साथी से यह कहता हुआ कि "इनको देखना।" गाड़ी से कूद पड़ा।

भागने वाले की असावधानता के कारण उसे कूदने में चोट लग गई। उसके पैर लड़खड़ा गये और कंकड़ों के ऊपर गिर कर उसके घुटने छिल गये। उससे रक्त निकलने लगा। पीछे से जब उसे किसी और व्यक्ति के कूदने की आवाज़ सुनाई दी तो वह एक क्षण के लिए घबड़ा सा गया। परन्तु फिर आफ़त को सिर पर आई जान उसने हिम्मत बाँधी और जल्दी से उठ कर भागना आरम्भ किया। उसी समय क्षणिक विद्युत के प्रकाश में उसने देखा कि यम के समान हैदर उसका पीछा कर रहा है। वह रेलवे लाइन के किनारे किनारे लगे हुए तारों में से निकलने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी धोती का सिरा लोहे के काँटों में उलझ गया। हैदर बहुत निकट आ गया और यदि कहीं वह एक ईंट से ठोकर खा कर गिर नहीं पड़ता तो भागने वाला बिचारा पकड़ा जाता। अपने भाग्य को सराहता हुआ किसी



प्रकार धोती छुड़ा कर वह मनुष्य फिर भागने लगा। थोड़ी देर के बाद उसने मुड़ कर देखा हैदर अभी उसका पीछा कर रहा था, यद्यपि वह बहुत पीछे रह गया था। इस समय भी छोटी२ बूंदे गिर रही थीं। यकायक न जाने कहाँसे पवन का एक भीषण झोंका आया और बहुत से खर पतवार और पत्ते कई हाथ पृथ्वी से ऊँचे उठ गए। बड़ी बड़ी बूँदें गिरने लगीं और कुछ ही समय में अविरल वृष्टि होने लगी। उस व्यक्ति को ऐसा मालूम पड़ा मानो हैदर उसके बिल्कुल निकट आ गया है। परन्तु वह था कुछ नहीं, भ्रम मात्र था। उसी के पैरों की ध्वनि ने उसके मनमें भ्रान्ति पैदा कर दी थी। वह बड़े वेग से आगे बढ़ने लगा। खेतों में पानी भरने लगा था। पग पग पर उसके पैर कींचड़ में धँस२ जाते थे, परन्तु वह एक पल के लिए भी रुकता नहीं था। भागता ही जाता था। अवसर पाकर वह अरहर के खेतों में घुस गया। कोई अब भी बराबर उसके पीछे लगा था। पीछा करने वाले के पद प्रहार से अरहर के छोटे छोटे वृक्षों के टूटने की ध्वनि अब भी उसके कर्ण कुहरों में पड़ रही थी। वह खेत से निकल कर एक खुले मैदान में आ गया। मेघों का प्रकोप कम हो गया था, परन्तु उसके प्रभाव के चिह्न समस्त पृथ्वी तल पर अंकित हो रहे थे।

सौ हाथ के अंतर पर हाहाकार करता हुआ नाला बह रहा था उसके निकट पहुँच कर उस व्यक्ति ने एक बार पीछे घूम कर देखा। बिजली चमकी। उसे स्पष्ट दिखलाई पड़ा कि कोई चला आ रहा है। अब क्या हो सकता है? भाग्य ने अन्त में आकर धोखा दे दिया। नाले का पार करना असम्भव था। कुछ ही मिनट में हैदर बिल्कुल समीप आ जायगा। उसका

कठोर हाथ बिचारे के शरीर पर पड़ेगा। वह भय से काँप उठेगा—उसकी स्वतंत्रता फिर छिन जायगी। फिर बिजली चमकी। वह व्यक्ति नाले के तट पर किंकर्तव्य विमूढ़ की भाँति खड़ा था। पास में कोई वृक्ष नहीं था कि उसी की आड़ में छिप जाता। परन्तु हैदर बहुत कम आगे बढ़ा था। कई मिनट हो गए। इसी बीच विद्युत का कई बार प्रकाश हुआ, परन्तु हैदर उसी स्थान पर खड़ा हुआ दिखाई दिया। कुछ ही देर में उस व्यक्ति का भ्रम दूर हो गया। उसकी समझ में आ गया कि जिसको उसने हैदर समझ लिया था वह एक शुष्क वृक्ष का ठूठ था। हैदर ने बहुत देर हुए निराश हो कर उसका पीछा करना छोड़ दिया था।



दूसरा परिच्छेद ।



अब उस मनुष्य के जी में जो आया। वह नाले के किनारे किनारे चलने लगा। बहुत दूर निकल जाने के बाद उसे नाले की चौड़ाई कम होती हुई दिखाई दी, यहाँ तक कि एक स्थान पर आकर वह नाला इतना छोटा हो गया कि उसे बालक भी पार कर सकता था। उसे नाँघनेके पश्चात् वहाँ पर खड़ा होकर वह सोचने लगा कि किधर जाऊँ। बहुत देर तक इधर उधर देखने पर भी उसे पता न चला कि वह भागता भागता किधर निकल आया है।

अधिक समय तक उस स्थान पर खड़ा रहना उचित न समझ कर वह वहाँ से अनुमान के सहारे एक ओर को चल पड़ा। इस समय वर्षा बन्द हो गई थी, मेघ-खंड आकाश में उड़ रहे थे और दो चार नक्षत्र इधर उधर दृष्टिगोचर हो रहे थे। जब वह मनुष्य कुछ दूर निकल आया तो उसे सामने सघन वृक्षों की ओट में प्रकाश की क्षीण ज्योति झिलमिलाती हुई दिखाई दी। उसकी आशा जग उठी; और वह उसी ओर जल्दी जल्दी पग बढ़ा कर चलने लगा।

पथ पर गड़ी हुई उस लालटेन के निकट पहुँच कर उसने देखा कि उसके समीपस्थ आम्रतरु की बड़ी बड़ी शाखाएँ टूट कर भूमि पर पड़ी हुई थीं। जिससे मार्ग बिल्कुल बंद हो गया था। ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड धूप में नगर को आते समय वह इसी वृक्ष की सघन छाया में बैठ कर श्रम निवारण किया

करता था। अपने दुःख के साथी की यह दुर्दशा देखकर उसे मन ही मन में क्षोभ हुआ। इस प्रकार निष्ठुर झंझावात द्वारा क्षत विक्षत किये जाने पर भी उस वृक्ष ने अपने सहज स्वभाव को नहीं छोड़ा था। इस हीन अवस्था में भी उसने अपने पुराने आश्रित के ग्राम का पता बता कर उसकी चिन्ता दूर कर दी।

उसने इस वृक्ष को देख कर सुंदरपुर का मार्ग निर्दिष्ट कर लिया। वह पूर्व वाली पक्की सड़क पर जल्दी जल्दी चलने लगा, एक मील तक यह सड़क बिल्कुल सीधी चली जाती है। शिव मंदिर के पास से इससे कई रास्ते कट जाते हैं। यहाँ पहुँच कर उस मनुष्य ने भयंकर रात्रि की निस्तब्धता में बड़ी भक्ति भावसे सिर नवा कर शिव जी को प्रणाम किया और उत्तर वाले रास्ते से मुड़ कर अपने ग्राम की ओर चलने लगा।

कुछ दूर चल कर सड़क से उतर कर उसने पगडंडी पकड़ी। अनेकों बीहड़ स्थान से होते हुए सैकड़ों खेत पार करते अर्द्ध रात्रि के लगभग उसने अपने ग्राम में प्रवेश किया।

चारों ओर सन्नाटा था। केवल झींगुरों की झंकार और दादुरों की ध्वनि सुनाई देती थी। तालाब के निकटवर्ती खंडहर के एक टूटे-फूटे मकान की खिड़की में से एक छोटा सा मिट्टी के तेल का दीपक जलता हुआ दिखाई देता था। उसे इतनी रात्रि गए उस मकान में प्रकाश देख कर आश्चर्य और कौतूहल हुआ। दवे पैर खिड़की के पास जाकर वह कान लगा कर भीतर की बातें सुनने लगा। इस प्रकार आधी रात के समय मंत्रणा करने वालों में से बहुतों के कंठ-स्वर से वह भली भाँति परिचित था। ये उसी के गाँव के लोग थे।



एक ने कहा,—"बाबू जी बहुत अत्याचार सह चुके अब नहीं सहा जाता ।"

दूसरे ने कहा,—"जिसी को चाहते हैं। ज़बरदस्ती पकड़ कर ले जाते हैं। निष्ठुरों को तनिक भी दया नहीं आती, चाहे कोई मरे अथवा जिये। उन्हें तो रंगरूटों से मतलब । मनुष्य न ठहरे भेड़ बकरी ठहरे। लड़ाई में ले जाकर कटवा दो। रोज ही सिपाही सिरपर सवार रहते हैं । आज आदमी चाहिए, कल रुपये । ऐसा मालूम होता है मानों आदमी मिट्टी के बनते हैं और रुपए वृक्ष में फरते हैं।"

तीसरे ने कहा,—"देखिए न परसों संतसिंह को पकड़ कर ले गए। उसने बहुत हाथ पैर पटका परन्तु एक न चली। उसकी स्त्री फूट फूट कर रो रही थी। उसका नन्हा सा बालक रोग शय्या पर पड़ा था। बेचारे ने बहुत अनुनय विनय किया परन्तु मनुष्य का हृदय हो न, तब तो पिघले। यमदूत की भाँति चिपट गए और बिचारे को घसीट कर ले ही गए।"

यह मनुष्य संतसिंह ही था जो चलती गाड़ी से कूद कर भागा था और इस समय उस मकान के पास छिपा हुआ अपने पड़ोसी के मुख से अपनी करुण कथा सुन रहा था।

चौथे ने कहा;-"जिमींदार किशनचंद स्वयं अपनी रियाया को इस प्रकार कटवा रहे हैं। जब रक्षक ही भक्षक हो गया तो कोई क्या कर सकता है। वे हैदर के रंगरूट भरती करने के लिए अपने ही जेब से मासिक वेतन देते हैं। हैदर ऐसा आचरणहीन और दुष्ट प्रकृतिका मनुष्य कदाचित ही संसार में कोई दूसरा हो। सरकार को प्रसन्न करने के लिये जिमींदार साहब इस प्रकार पाप संचय कर रहे हैं। और अपनी प्रजा

का सर्वनाश कर रहे हैं। उन्हीं की आँखों के सामने दरोगा साहब लूट खसोट मचाते हैं और वे कुछ कहते भी नहीं।"

पाँचवे मनुष्य ने क्रोध से थर्राते हुए स्वर में कहा,—"कहेगा क्या, वह तो मनुष्यता बेंच कर पिशाच बन बैठा है। हैदर और दरोगा हरसहाय ऐसे दुष्टात्मा ही उसके साथी होने के योग्य हैं। इन तीनों को यदि संसार से बिदा कर दिया जाय तो पृथ्वी का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय।"

जिस मनुष्य ने आवेश में आकर यह बातें कहीं थीं उसे संतसिंह ही क्या सुंदरपुर का बच्चा बच्चा जानता था। वह जितना सहृदय था उतना ही साहसी था। दूसरों का दुःख देख कर वह बच्चों की भाँति रोने लगता था और पापाचार देख कर उसका रक्त उबलने लगता था।

एक कोमल कंठध्वनि सुनाई दी,—"कैसी नासमझी की बातें करते हो। इन लोगों की हत्या करने से तुम्हारा क्या लाभ होगा? केवल यही न कि तुम एक क्षण के लिये उनके अत्याचारों से मुक्त हो जावोगे। परन्तु दूसरे ही दिन देर भी नहीं लगेगी उनके स्थान पर दूसरे उनसे भी निष्ठुर प्रजा पीड़क आजायेंगे।"

शिवनाथ बाबू ने त्रसित ग्रामीणों की समय कुसमय में सेवा शुश्रूषा करके उनको इतना वशीभूत कर लिया था कि वे सदा उनकी अँगुली के संकेत पर काम करने के लिए तैयार रहते थे। ऐसे परोपकारी सज्जन की आज्ञा टालना वे पाप समझते थे। उनका विचार था कि यदि हम शिवनाथ बाबू की आज्ञा न मानेंगे तो हमारे देवता हमसे रुष्ट हो जायँगे। उनके इस उपदेश को सुन कर सब ने विकल हो कर

पूछा,—"फिर आप ही बतलाइए क्या करें ? किस प्रकार इन यंत्रणाओं से बचें ?"

शिवनाथ बाबू ने कहा,—"चलो, इस बगल वाली कोठरी में चलो। इसमें पत्रादि और कलम दावात रक्खी हुई है। तुम अपने कष्ट का पूरा पूरा हाल मुझे लिखवा दो। लाला किशन-चंद मेरे घनिष्ट मित्रों में से हैं। कालिज में मेरे सहपाठी रह चुके हैं। मैं तुम लोगों की व्यथा का हाल जब उनसे कहूँगा तो मुझे विश्वास है कि वह अवश्य उस पर कान देंगे। और तुम लोगों के कष्टों के निवारण करने का उद्योग करेंगे।"

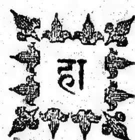
शिवनाथ का कथन समाप्त होते ही सब लोग उठ उठ कर पार्श्ववर्ती कोठरी में जाने लगे। मिट्टी का वह दीपक भी उस कमरे से उठ गया और वह कमरा निर्जन और प्रकाशहीन हो गया। संतसिंह अब यहीं खड़ा रह कर क्या करता? वह चुपके २ खड़हर से उतर कर अपने घर की ओर चल पड़ा। मकान के निकट पहुँचते ही गाँव के कुत्ते बड़ी ज़ोर से भूंकने लगे।

पानी बरसने के कारण कच्चे दीवार की मिट्टी कट कर संत-सिंह के घर के द्वार पर जमा होगई थी। उस स्थान पर पैर रखते ही संतसिंह फिसलते २ बचे। उन्होंने जिस समय द्वार की कुंडी खटखटाई उस समय उनका हृदय बड़े बेग से धड़क रहा था।



तीसरा परिच्छेद ।





हाथ में कड़ुवे तेल का दिया लिए एक म्लान मुख मलिन वसना स्त्री ने आकर द्वार खोला। वह सहसा संतसिंह को सामने खड़ा देखकर चौंक पड़ी। दिया का तेल गिरते गिरते बचा।

कुछ सँभल कर उसने प्रसन्नता और उत्सुकता से पूछा,—"क्या तुम छोड़ दिये गए?"

संतसिंह ने कहा,—"नहीं, मैं तो भाग आया हूँ।"

उस स्त्री का मुख उतर गया। उसने शोकाकुल होकर कहा,—"वे तुम्हें फिर नहीं पकड़ ले जायँगे?"

संतसिंह ने कहा,—"मैं यहाँ नहीं रहूँगा। किसी दूसरे गाँव को चला जाऊँगा। बीच बीच में गोविन्द को आकर देख जाया करूँगा। उसका सुंदर मुखड़ा देखे बिना मुझे पल भर भी कल नहीं पड़ती।"

स्त्री ने कहा,—"कितना मनौता माना; अहर्निश पूजा पाठ किया तब कहीं जाकर पुत्र का मुख देखने को मिला। उसे भी दिन रात रोग घेरे रहता है। विपत्ति आती है तो चारों ओर से आती है। बैठे बैठाए तुम झगड़े में पड़ गए। न जाने क्यों विधाता हम लोगों से इतना रूठ गये हैं?"

यह कहते कहते उस स्त्री की आँखों में आँसू भर आए।

संतसिंह ने कहा,—"छिः, रोती क्यों है? गोविन्द की तबीयत अब कैसी है?"

स्त्री ने कहा,—"एक घंटा हुआ शिवनाथ बाबू आकर दवा दे गए हैं। उसके ज्वर का ताप कुछ कम नहीं हुआ है।"

संतसिंह ने पूछा,—"उसे सुलाया कहाँ है ?"

स्त्री ने उत्तर दिया,—"रसोई घर के बगल वाली कोठरी में उसको खाट बिछा दी है। कहीं हवा न लग जाय इसी भय से उसे बरोठे में नहीं सुलाया।"

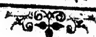
संतसिंह ने उस कोठरी में जाकर देखा कि गोविन्द एक टूटी हुई खाट पर बेखबर पड़ा है। ज्वर के कारण उसका शरीर इतना तप रहा है कि अधिक समय तक उस पर हाथ नहीं रक्खा जाता। पिता ने जाते ही उसके रक्तहीन कपोल चूम लिए। बालक धीरे धीरे हाथ पैर हिला कर कराहने लगा—वह स्त्री पैताने खड़ी हुई सजल नेत्रों से पुत्र के मुख की ओर देख रही थी। संतसिंह सिरहाने बैठ गए।

संतसिंह ने बालक के ललाट पर हाथ रखकर कहा,—"बहुत ज्वर है।"

उस स्त्री ने बालक का नन्हा हाथ अपने हाथ में ले लिया और दुखित मन से वहीं बैठ गई। बालक का कराहना अभी बन्द नहीं हुआ था।

संतसिंह एक क्षण चुप रहने के बाद उस स्त्री से बोले,—"अच्छा कटोरी लाकर तनिक इसके पैर के तलवे पर फेरो। कदाचित उसी से इसे आराम मिले।"

स्त्री उठ कर रसोई घर में कटोरी लेने चली गई। संतसिंह बड़ी व्याकुलता से गोविन्द का शरीर टटोलने लगे। स्त्री ने लौटकर कटोरी हाथ में लिए हुए कोठरी में पग रक्खा ही था कि बाहर कुछ मनुष्यों की पदध्वनि सुनाई दी। किसी ने



चिल्ला कर कहा,—"दरोग़ा साहब संतसिंह का मकान यही है।"

एक साथ ही द्वार पर चार पाँच चरण प्रहार हुए। किवाड़ चरचरा कर टूट गया। कुछ मनुष्य लालटेन हाथ में लटकाए, कुछ लाठी लिए भीतर घुस आए। उनके आगे २ हैदर था।

मारे डर के स्त्री के हाथ से कटोरी छूट गई। वह पुतली सी खड़ी रह गई। संतसिंह भी सन्नाटे में आ गए। कोई भागने का उपाय शेष नहीं रहा था। कोठरी में एक ही द्वार था। सामने आँगन में हैदर, दरोग़ा साहब, और सिपाही खड़े थे।

जिस कोठरी में संतसिंह बैठे थे उसी ओर हैदर ने संकेत करके कहा,—"दरोग़ा साहब, संतसिंह इसी कोठरी में होगा। देखिए न उसमें दीपक जल रहा है।" फिर उसने अपने एक साथी से कहा,—"रघुबर, तुम द्वार पर खड़े रहो। कहीं इधर से भाग न जाय।"

यह कह कर दरोग़ा साहब को साथ लिए हुए हैदर उस कोठरी में घुसा। स्त्री भयभीत होकर एक कोने में खड़ी हो गई। उसके मुँह से एक दबी हुई चीख़ निकल गई। उसी समय संतसिंह को देखकर हैदर पैशाचिक प्रसन्नता से चिल्ला उठा,—"संतसिंह यह है।"

संतसिंह बुत की तरह खड़ा था। ज्वर पीड़ित बालक, हैदर के कर्कश स्वर से चौंक कर रो पड़ा। निर्दयी दरोग़ा ने एक सिपाही की ओर संकेत करके कहा,—"देखते क्या हो, आसामी को गिरफ्तार कर लो। थानेदार साहब की आज्ञा होते ही एक लाल पगड़ी वाले ने आगे बढ़कर संतसिंह के हाथों में



हथकड़ी भर दी। उन्होंने एक बार तृषित दृष्टि से गोविन्द की ओर देखा। सिपाही उन्हें घसीट कर आँगन में ले आए। संतसिंह की स्त्री पृथ्वी पर हाथ पटक पटक कर रोने लगी। उसका करुण रुदन, मकान की एक एक दिवाल हिलाने लगी।

गाँव भर में हलचल मच गई। "डाका पड़ गया," "लाठी लेते आना," "लालटेन तो लाना।" सारे ग्राम में यही आवाज़ सुनाई देती थी। लोगों के दौड़ने की पदध्वनि स्पष्ट कर्ण-गोचर होने लगी। कुछ लोगों ने कहा,—"इधर आना, संतसिंह के मकान में गड़बड़ मालूम होता है?" एक ने द्वार पर पहुँ-चते पहुँचते कहा,—"किवाड़ टूटे पड़े हैं। अवश्य कोई भीषण घटना घटी है।" इतना कहते कहते चार पाँच गाँव के हट्टे कट्टे मनुष्य भीतर घुस आए। उनके पीछे शोर मचाते हुए और लोग भी आने लगे।"

हैदर ने मामला बिगड़ते देख कर डपट कर कहा,—"क्या भीड़ लगाई है? क्या यहाँ कोई तमाशा हो रहा है? संतसिंह भाग आया था, उसी को हम लोग गिरफ्तार करने आए हैं। चलो, सब लोग बाहर चलो।" यह कहता हुआ हैदर मनुष्यों की भीड़ हटाता हुआ बाहर आने लगा। पीछे पीछे सिपाही संतसिंह को घेरे हुए चलने लगे। दरोगा साहब की झाड़ झटकार की उपेक्षा करके स्त्री अधिक ऊँचे स्वर से रोती हुई सब के साथ चलने लगी। उसका रोना सुनकर गाँव वालों का हृदय फटा जाता था। सब लोग बाहर आए।

हैदर ने कहा,—"तुम लोग अपने अपने घर जाओ। हम संतसिंह को थाने पर लिए जाते हैं।"

हैदर की बात पूरी भी न हो पाई थी कि एक ओर से

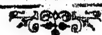
आठ दस आदमियों का गोल आता हुआ दिखाई दिया। उसमें कुछ लोग दौड़ते चले आ रहे थे, और कुछ जल्दी जल्दी पग बढ़ाते हुए। उन लोगों के हाथ में मोटी मोटी लाठियाँ थीं।

निकट आते ही लाल साफे वालों को देख कर मारे क्रोध के वे आपे में न रहे। वे लाठी उठा कर मारो सालों को कहते हुए उन पर टूट पड़े। जो लोग वहाँ पहले से जमा थे अब उन्हें भी रोष आ गया। उन्होंने भी अपनी लकड़ियाँ सँभालीं। पुलिस वाले भी दोनों हाथ से लाठियाँ घुमाने लगे। दरोगा साहब पीछे रह गए थे। उन्होंने प्राण बचाने का और कोई उपाय न देख जेब से तमंचा निकाल लिया। और दीवाल से पीठ लगा कहा,—"जो कोई इधर आवेगा उसे मैं गोली मार दूंगा।"

इसी अवसर पर किसी की एक तेज़ आवाज़ गूँज उठी,—"ठहरो, ठहरो, क्या करते हो?" तनी हुई लाठियाँ रुक गईं।

जिस समय संतसिंह के मकान में कोलाहल हो रहा था उस समय शिवनाथ बाबू ग्रामवासियों के मुख से उनकी दुःख-कथा सुनकर खँडहर की कोठरी में बैठे हुए लिख रहे थे। कोलाहल सुनकर उन के मन में किसी आकस्मिक दुर्घटना की आशंका हुई। वे अपने साथियों को लेकर सहायतार्थ उधर चल पड़े। जिनकी उत्सुकता बढ़ रही थी वे दौड़ते हुए कई पग आगे चलने लगे। इन्होंने ही घटनास्थल पर पहुँच कर लाठी तान दी थी। यदि शिवनाथके वहाँ पहुँचने में और उनके शमन करने में एक क्षण की भी देर हो जाती तो भयंकर रक्त-पात हो जाता।

शिवनाथ को आगे बढ़ते देखकर लोग रास्ता देने लगे।



साँप की भाँति क्रोध से फुफकारते हुए पुलीस वालों के बीच में सहसा संतसिंह को रस्सी से बँधा हुआ खड़ा देख शिवनाथ बाबू आश्चर्य्य से स्तंभित हो गए ।

उन्होंने अचंभे से पूछा,—"संतसिंह तुम यहाँ कहाँ ?"

संतसिंह ने मुंह लटका कर कहा,—"मैं भाग आया था। गोविन्द का मोह मुझे यहाँ खींच लाया ।

यह कहते कहते उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली । उसकी स्त्री अब भी रो रही थी । थानेदार साहब विकट स्थिति से छुटकारा पाकर पुलीस वालों के आगे बड़े शान से आकर खड़े हो गए।

शिवनाथ ने कहा,—"संतसिंह रोओ मत । मैं गोविन्द को अपनाही लड़का समझता हूँ । तुम्हारे पीछे उसे ज़रा भी कष्ट न होगा । उसे मामूली ज्वर है । दवा दारू से जल्दी अच्छा हो जायगा । तुम बिलकुल चिंता न करो ।"

दरोगा साहब ने शिवनाथ बाबू से गाँव वालों की ओर देख कर कहा,—"आपही का सहारा पाकर यह लोग आसमान पर चढ़ गए हैं । नहीं तो इन टुच्चों का साहस कि यह सरकारी काम में बाधा डालते, इस तरह बलवा करने के लिए तैयार हो जाते ?"

शिवनाथ बाबू बोले,—"आखिर वह भी तो मनुष्य ही हैं । कहाँ तक धैर्य्य रक्खें । आप व्यर्थ उन पर दोष लगाते हैं ।"

दरोगा साहब ने कहा,—"मैं खूब समझता हूं । आप ही तो इस उपद्रव की जड़ हैं । यह राजविद्रोहियों का जो दल

आप बनाए घूमते हैं उसका मजा आपको जल्दी ही मिलेगा घबड़ाइए मत।"

शिवनाथ बाबू को इस तरह थानेदार साहब से अपमानित होते देखकर लोग रोष से काँपने लगे।

दरोगा साहब ने सिपाहियों से कहा;—"चलो आसामी को ले चलो।"

संतसिंह घर द्वार, पत्नी पुत्र से बिछोह होते समय एक बार दीर्घ निश्वास ली और रोते हुए शिवनाथ बाबू से कहा,—"बाबू जी आप ही का सहारा है। अपने तीन चार वर्ष के पुत्र गोविन्द को आप ही के चरणों पर डाले जाता हूं।"

शिवनाथ बाबू के भी आँखों में आँसू आ गए। उन्हों ने दुःख के वेग को रोकते हुए कहा,—"गोविन्द, मुझे तुम से भी अधिक प्यारा है। तुम उसकी ज़रा भी फिक्र न करना।"

संतसिंह को लिए हुए दरोगा साहब और हैदर सिपाहियों के साथ गाँव के बाहर निकल गए।

शिवनाथ बाबू ने दो चार आदमियों को छोड़कर सब से घर चले जाने को कहा। लोगों ने इस घटना पर समालोचना करते हुए अपने अपने घर का रास्ता पकड़ा। उस रोज रात भर अधिक तर लोग जागते ही रहे। मनमानी टीका टिप्पणियाँ करते करते जिसे नींद आ गई वह सो भी गया।

शिवनाथ बाबू सन्तसिंह की स्त्री को भाँति भाँति से सांत्वना देते थे, परन्तु उसका रोना किसी प्रकार बंद ही नहीं होता था। अन्त में उन्होंने कहा,—"गोविन्द का मुँह देख कर

कुछ ढाढ़स बाँधो। इस प्रकार रोती रहोगी तो उस बेचारे की क्या अवस्था होगी। देखो, समय हो गया है उसे उठकर दवा दो।"

पुत्र की ममता बड़ी बुरी होती है। हृदय पर पत्थर रख कर आँसू पोंछती हुई वह धीरे धीरे उठ खड़ी हुई। और सिसकती हुई पुत्र को औषधि देने की व्यवस्था करने लगी।



चौथा परिच्छेद ।



संतसिंह को बन्दी बनाए हुए जिस समय दरोगा साहब सुन्दरपुर ग्राम से निकल कर मैदान में आ गए उस समय तीन प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। आकाश बिल्कुल स्वच्छ हो गया था। परन्तु पृथ्वी गीली थी और जहाँ तहाँ गड्ढों में जल भरा हुआ था। दो चार पक्षी, पर फड़फड़ाते हुए कभी कभी सर के ऊपर से होकर निकल जाते थे। यद्यपि गाँव से यह लोग बहुत दूर निकल आए थे फिर भी थानेदार साहब के हृदय में कुछ ऐसा डर समा गया था कि वे बार बार घूम कर देखते जाते थे। इसी तरह सब चुपचाप बहुत दूर तक चले आए। अन्त में दरोगा साहब ने कहा,—"मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि शिवनाथ ही सब को भड़काता है। जब सामने पड़ जाता है तो लल्लो,चप्पो करने लगता है।"

हैदर ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा,—"हुज़ूर बहुत ठीक कहते हैं, शिवनाथ ही तो सब का गुरु है।"

हैदर मियाँ बात पूरी भी न कर पाए थे कि उनका पैर एक गड्ढे में जाता रहा। हाथ और मुँह सब कीचड़ से छिप गया। लट्ठे का पैजामा जिसको बनवाए हुए अभी चार ही दिन हुए थे बिल्कुल ख़राब हो गया। संतसिंह के अतिरिक्त हैदर की इस दुर्गति पर सभी ठट्ठा मार कर हँसे। शिवनाथ का विषय कुछ समय के लिए टल गया। लोग इधर उधर की

बातें करने लगे, परन्तु रघुबर कांसटेबिल ने दरोगा साहब को प्रसन्न करने के लिए गई बात को फिर उभाड़ा।

उसने कहा,—"हुजूर, एक दिन गश्त किए हुए मैं राम-नगर से लौटा आता था। रास्ते में रात हो जाने के कारण सुन्दरपुर में ठहर गया। भूख के मारे मेरे पेट की आतें कुलकुला रही थीं। मैं चार पैसे लेकर देवीदीन के पास गया और कहा,—"भैय्या मुझे पाव भर दूध दे देना।" शिवनाथ भी वहीं खड़ा था मुझे देखते ही मेरे ऊपर भूखे बाघ की तरह टूट पड़ा। कहने लगा,—"यहाँ पुलीस वालों की जूतों से खबर ली जाती है। ख़ैरियत चाहते हो तो यहाँ से अभी चले जाओ, नहीं तो मारे लाठियों के तुम्हारा धुरकस निकाल दिया जायगा।"

इन एक दम निर्मूल बातों को सुनकर संतसिंह से न रहा गया, उसने कहा;—"व्यर्थ में क्यों झूँठ बोलते हो। मैं भी तो उस दिन वहाँ मौजूद था। तुम बलात् देवीदीन के दूध की हाँड़ी उठाए लिए जाते थे। इस पर देवीदीन तुमसे झगड़ने के लिए तैयार हो गया। उसी समय शिवनाथ बाबू ने आकर तुम्हें थोड़ा सा दूध दिलवा दिया। दाम के नाम पर एक आना तो दूर रहा तुम एक कौड़ी तक देने के लिए तैयार नहीं थे।"

संतसिंह बिचारे नहीं जानते थे कि सत्य बोलना भी कभी कभी महापाप होता है। इस प्रकार अकस्मात् ही भंडा फूटते देख कर रघुबर जल भुन कर खाक हो गया। उसने कड़क कर कहा,—"मैं भूठ बोलता हूँ?" इतना कहते कहते उसने संतसिंह के मुँह पर तमाचा मार दिया। संतसिंह पीड़ा से तलमला उठे और कुछ बड़बड़ाने लगे। थानेदार साहब ने

कहा,—"साले को और मारो । इससे बीचमें बोलने को कौन कहा था ?"

दरोग़ा साहब की आज्ञा मिलने भर की देर थी निस्सहाय संतसिंह के ऊपर चारों ओर से लात घूँसे पड़ने लगे। वे बेदम होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उसके घुटने के घाव पर फिर चोट लग जाने के कारण उससे रक्त प्रवाह होने लगा। दरोग़ा साहब की आज्ञानुसार चार आदमियों ने उसे उठाकर सीधा खड़ा कर दिया।

इसी समय बड़ी दूर पर पत्तों के खड़खड़ाहट का शब्द सुनाई दिया। दरोग़ा साहब चौकन्ने हो कर खड़े हो गए। उन्होंने कहा,—"हैदर, मालूम होता है गाँव वाले हमारा पीछा किए हुए चले आ रहे हैं।"

हैदर ने कहा,—"तो अब क्या किया जाय ?"

थानेदार साहब बोले,—"ज़रा आगे चलो, वहाँ मुरेड़ बहुत ऊँची है। वह चारों ओर काँटों से घिरी है, और वहाँ पगडण्डी बहुत तंग हो गई है। उससे होकर एक बार केवल एक ही मनुष्य निकल सकता है। उसके पीछे खड़े होकर हम लोग सैकड़ों आदमियों से बड़ी आसानी से निपट सकते हैं।"

हैदर को भी दरोग़ा साहब की सलाह पसन्द आ गई। पत्तों की खड़खड़ाहट और भी निकट सुनाई देने लगी, परन्तु प्रकाश का कहीं नाम नहीं था और बीच बीच में पत्तों के खड़खड़ाने का शब्द भी बन्द हो जाता था। इससे क्या, क्या वे बिना प्रकाश नहीं आ सकते थे? साथ में रोशनी न रहने से जल्दी जल्दी पहिचाने जाने का भय नहीं रहता है। हो सकता है, कदाचित् यही सोच कर वे साथ में लालटेन आदि



न लाये हों । बीच बीच में ढूँढ़ने ही के लिए मालूम होता है वह ठहर जाते हैं। इसी प्रकार तर्क वितर्क करते हुए दरोग़ा साहब संतसिंह को घसीटते हुए अपने साथियों के साथ जल्दी २ चले जा रहे थे ।

निश्चित स्थान पर पहुँच कर उन्होंने चक्रव्यूह की रचना आरम्भ की । सब से पीछे दो सिपाही संतसिंह को लेकर खड़े हो गए । पगडण्डी के दोनों ओर लाठी लेकर हैदर और रघुबर जा डटे । और दरोग़ा साहब स्वयं हाथ में पिस्तौल लिए हुए संतसिंह के दो पग आगे आकर जम गए ।

विचित्र प्रकार की दीर्घ निश्वास और पत्तों की खड़खड़ाहट और भी निकट सुनाई दी । दरोग़ा साहब ने पिस्तौल को खूब कस कर पकड़ा ।अब तो पोछा करने वाले बिलकुल समीप आ गए थे । दरोग़ा साहब ने कहा,-"हैदर सावधान" एक मिनट बोता—दो मिनट—तीन मिनट । हैदर और रघुबर की लाठी उठी । दो काले काले भारी शरीर बड़े ज़ोरों से साँस लेते हुए मुरेड़ से नीचे कूदे । उनकी पीठ पर हैदर और रघुबर की लाठी भरपूर पड़ी, दोनों भैंसे जान बचाकर भागे । क़िस्मत के मारे न जाने कहाँ से लड़ते हुए इस समय लाठी खाने के लिए बिचारे इधर आ निकले थे। सचमुच भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है ।

चक्रव्यूह की रचना करने का परिश्रम निष्फल जाने का दरोग़ा साहब को तनिक भी शोक नहीं हुआ । उल्टे उन्होंने ब्रह्मा जी को बहुत बहुत धन्यवाद दिये कि उन्होंने उनके शत्रुओं को वृषभ बना कर अपने परम भक्त थानेदार साहब की ऐसे समय में रक्षा की । हाँ, मन ही मन अपनी मूर्खता पर



उन्हें कुछ लज्जा अवश्य हुई। पर कृत्रिम हँसी हँसकर उन्होंने उसे चतुरता से छिपा लिया।

वे लोग परस्पर सम्भाषण करते हुए फिर चलने लगे। बात ही बात में एक सिपाही ने अपने चाचा की कथा सुनाई एक रात्रि को उन्होंने घरमें चोर घुसा हुआ समझ कर बड़ा शोर गुल मचाया। अन्त में चोर का तो कहीं पता ही न चला, परन्तु एक कुत्ता अवश्य घर से पों पों करता हुआ निकल भागा।

इसी प्रकार भ्रम की कथायें कहते कहते भूत प्रेत की बातें होने लगीं। हैदर को जिन्नों का हाल खूब मालूम था। उनके कौतूहलजनक कृत्यों का वह खूब विस्तार से वर्णन करने लगा। दरोग़ा साहब ने जब सुना कि जिनके वश में जिन्न रहते हैं उनको बड़ा आनन्द रहता है स्वेच्छानुसार जब जो वस्तु चाहें वे मँगवा कर खा पी सकते हैं तब तो उनका मन डोल उठा। हैदर से उन्होंने जिन्न को वश करने के उपाय पूछे, परन्तु जब वह कुछ बतला न सका तो मन मार कर बैठ रहे।

नगर के दीपक अब प्रत्यक्ष चमकते दृष्टिगोचर होने लगे थे। यहीं से सीधी सड़क पर एक मील तक चले जाने के बाद चौक मिलता है। वहीं पर तनिक बाईं ओर को हट कर शहर की कोतवाली है। नगर तक पहुँचते पहुँचते सब लोग ऐसे थक गए थे मानों मीलों की मंजिल मारे हुए चले आ रहे हैं।

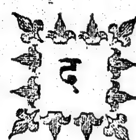
कोतवाली पर पहुँच कर दरोग़ा साहब ने संतसिंह को हवालात में बन्द करवा दिया। उनके लिए पलंग पहले ही से

बिछा बिछाया तैयार था। सिरहाने फ़र्शी रक्खी हुई थी। कपड़े उतार कर वे उसी पर लेट गए। नौकर तत्क्षण चिलम भर लाया और उसे फ़र्शी पर रख कर जल्दी जल्दी पैर दाबने लगा। दरोग़ा साहब धीरे धीरे फ़र्शी पीते हुए सो गए।

जब उनकी आँख खुली तो दिन बहुत चढ़ आया था।



पाँचवाँ परिच्छेद ।


रोग़ा साहब ने उठते ही नौकर को पुकारा। वह एक लोटे में जल ले आया। प्रातःक्रिया से निवृत्त होकर उन्होंने मुंशी जी से पूछा,—"कहिए, कल रात्रि में जो आसामी आया है उसकी हुलिया आदि लिख ली गई ?"

मुंशी जी ने बड़ी मुस्तैदी से उत्तर दिया,—"जी हाँ।"

दरोग़ा साहब ने कहा,—"उसके साथ एक सिपाही कर दीजिए। मैं ज़रा उसे लाला किशनचन्द के यहाँ ले जाना चाहता हूँ। उन्हें भी तो ख़बर मिल जाय कि उनकी प्रजा कैसी बीर है।"

यह कह कर दरोग़ा साहब एक कोठरी में चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी वर्दी कसी और सिर पर साफ़ा पहिन उसमें झब्बा लगा आइने के सामने आकर खड़े हो गए। अहा, कैसी मनमोहक छबि थी ? मुख पर चेचक के दाग़ चमक रहे थे। टिपंखी आखें बड़ी चतुर थीं। देखने वाला मर कर भी उनके लक्ष्य का पता नहीं लगा सकता था। मूँछ भी जहाँ तहाँ उड़ गई थी। सारांश यह कि ब्रह्मा ने इनकी गढ़न में अपनी सारी कारीगरी समाप्त कर दी थी। साफ़ा एक ओर को तनिक झुक गया था, उसे सीधा कर और गिलौरी-दान से पान निकाल कर गालमें दबाये कोठरी से बाहर आए।



सिपाही संतसिंह को साथ लिए हुए तैयार खड़ा था। कोतवाली के सामने एक इक्का वाला खड़ा हुआ दुहाइयाँ दे रहा था। उसकी प्रार्थना पर ध्यान न देकर दरोग़ा साहब संतसिंह और सिपाही को लिए हुए उस पर आकर बैठ गए। इक्का वाला भी झक मार कर इक्का हाँकने लगा। रास्ते में घोड़े को कई बार पानी पिलाते, बीच बीच में दरोग़ा साहब की अमृतमय गालियाँ सुनते, कई सड़कों से होते हुए कोठी के सामने उसने इक्का लाकर खड़ा कर दिया।

कोठी की बनावट बड़ी सुन्दर थी। सामने पुष्पित और पल्लवित उद्यान था। उसमें छोटे छोटे बालक खेल रहे थे। पानी के हौज के पास उलटी हुई तीन पहिए वाली पैरगाड़ी पड़ी हुई थी और वृक्ष के नीचे हाकी का टूटा हुआ डण्डा।

द्वार पर पहुँचते ही दरोग़ा साहबने ड्योढ़ीवान से पूछा,—"जिमीदार साहब घर पर हैं?"

ड्योढ़ीवान ने कहा,—"हाँ हुजूर, गोल कमरे में बैठे हैं।"

दरोग़ा साहब ने कहा,—"जाकर कह दो, दरोग़ा हरसहाय आए हुए हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।"

ड्योढ़ीवान ने लौट कर कहा,—"हुजूर भीतर चलिए बुलाते हैं।"

दरोग़ा साहब के भीतर कदम रखते ही जिमीदार साहब ने कुर्सी पर से उठकर हाथ मिलाया और बड़ी नम्रतासे बैठने के लिए कहा।

जब दरोग़ा साहब निकटवर्ती गद्दी वाली कुर्सी पर बैठ गए। तो जिमीदार साहब ने पूछा,—"कहिए, कैसे कृपा की।"

दरोगा साहब बोले,—"कुछ पूछिए मत, आपके आसामी आज तक आपका नमक खाते रहे और अब आप ही को हानि पहुंचाने के लिए तुले हुए हैं।"

ज़िमींदार साहब—"क्यों, क्या हुआ ?"

दरोगा साहब—"संतसिंह का हाल नहीं सुना ?"

ज़िमींदार साहब—"वह अभी चार दिन हुए रंगरूटों में भर्ती होकर गया है न ?"

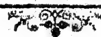
दरोगा साहब—"वह भाग आया था। कल हमने उसे गाँव पर जाकर गिरफ्तार किया। उसे यहाँ साथ लेते आया हूँ। ज़रा बुलाकर उसकी मिज़ाज़पुर्सी तो कर लीजिए।"

लाला किशनचन्द ने घण्टी बजायी। उसी क्षण एक नौकर सामने आकर खड़ा हो गया। उसे उन्होंने संतसिंह और सिपाही को भीतर बुला लाने को आज्ञा दी। नौकर के बाहर चले जाने पर दरोगा साहब ने फिर कहना आरम्भ किया,—"देखिए न, जब मैं संतसिंह को गिरफ्तार करने गया तो गाँव भर लाठी लेकर बलवा करने के लिए खड़ा हो गया।"

ज़िमींदार साहबने बड़े आश्चर्य से दोहराया,—"लोग बलवा करने के लिए खड़ा हो गए ?"

दरोगा साहब ने कहा,—"यदि मैं इसके लिए तैयार न हो गया होता तो क्या जीवित लौटकर आता। वह तो कहिए पिस्तौल हाथ में लेता गया था।"

इतने में सिपाही संतसिंह को लिए हुए कमरे में आ पहुँचा। संतसिंह ने झुककर ज़िमींदार साहब को सलाम किया। सलाम पर न ध्यान देते हुए उन्होंने रूखे स्वर से कहा,—"संतसिंह, तुमने हमारी बड़ी बदनामी कराई।"



वह चुप था।

लाला किशनचन्द ने फिर कहा,—"चुप क्यों हो ? बोलते क्यों नहीं ? आख़िर तुम क्यों भाग आए थे ?"

संतसिंह ने आँसू टपकाते हुए टूटे शब्दों में कहा,—"मेरा एक पुत्र मृत्युशय्या पर पड़ा है। मुझसे उसे छोड़कर कहीं जाया नहीं जाता। मुझे किसी प्रकार छोड़वा दीजिए।"

लाला किशनचन्द ने बिगड़ कर कहा,—"तूने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है न कि तुझे छोड़वा दूँ। यदि मजिस्ट्रेट साहब सुन पावें कि मेरा दिया हुआ रंगरूट गाड़ी से कूद कर भागा था तो मुझे क्या कहेंगे।"

दरोग़ा साहब ने कहा,—"और क्या सुनेंगे नहीं। ऐसी बातें कहीं छिपी रहती हैं। वह तो थाने के रोज़नामचे में दर्ज हो चुकी हैं।"

लाला किशनचन्द ने कहा,—"मैं तो अपने आसामियों से आजिज़ आ गया हूँ। ये रोज़ एक न एक ऐसी बात कर बैठते हैं कि मुझे उसके लिए हाकिमों के सामने लज्जित होना पड़ता है।"

दरोग़ा साहब ने कहा,—"सच पूछिए तो सारे उपद्रव का मूल कारण शिवनाथ बाबू हैं। ऊपर से तो आप से चिकनी चुपड़ी बातें करते हैं और भीतर ही भीतर छुरी चलाते हैं।"

दरोग़ा साहब शिवनाथ बाबू के विषय में बातचीत करते समय उन्हें केवल शिवनाथ ही कह कर पुकारा करते थे। परन्तु उन्होंने जिमीदार साहब के सामने शिवनाथ बाबू के नाम के पीछे आदर सूचक शब्द "बाबू" का भी प्रयोग कर

दिया, क्योंकि वे जानते थे कि जिमीदार साहब और शिवनाथ बाबू में बड़ी मित्रता है।

इधर कई लोगों के मुंह से लाला किशनचंद शिवनाथ बाबू की शिकायत सुनते चले आते थे। इसलिए उनका मन शिवनाथ बाबू की ओर से खट्टा होता जाता था। आज दरोग़ा साहब को भी उसी बात की पुष्टि करते सुन कर शिवनाथ की ओर से उनका मन और भी मैला हो गया।

अपनी मंशा फलते देख कर दरोग़ा साहब को मन ही मन बड़ी खुशी हुई। उन्होंने जिमीदार साहब के निकट जाकर उनके कान में कुछ कहा। उसे सुनते ही लाला किशनचंद के चेहरे का रंग बदल गया। उन्होंने अविश्वास पूर्ण स्वर में कहा "ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

थानेदार साहब ने कहा,—"आज आप विश्वास न मानिये परंतु एक दिन आप ही कहेंगे कि हाँ हरसहाय ने सच कहा था।"

दरोग़ा हरसहाय ने कुरसी से उठते हुए कहा,—"जिमीदार साहब, अब मुझे आज्ञा दीजिए। आज ११ बजे दिन की गाड़ी से मुझे संतसिंह को भेज देना है। इसके और साथी एक दिन पहले जा चुके हैं। मिलिट्री ट्रेनिंग दो ही तीन दिन में आरम्भ होने वाली है। इसलिए जल्दी करना पड़ेगा।"

चलते समय संतसिंह ने दयाप्रार्थी दृष्टि से जिमीदार साहब की ओर देखा। वे इस समय न जाने किस विचार में डूबे हुए थे।

साढ़े नौ बजे तक दरोग़ा साहब कोतवाली को लौट आये



और दस बजे तक हैदर संतसिंह को लेकर स्टेशन की ओर रवाना हो गया।

कुछ दिनों के बाद संतसिंह की स्त्री को एक चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था।

मैं अच्छी तरह से हूँ। दिन में दो बार कवायद करनी पड़ती है। बाकी समय में कुछ काम नहीं रहता। गोविन्द की चिन्ता दिन रात बनी रहती है। उसकी तबियत का हाल तुरन्त लिखना। खर्चे के लिए पंद्रह रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजता हूँ।

संतसिंह।

छठाँ परिच्छेद।

दरोग़ा साहब से साक्षात् हुए कई दिन बीत गए परंतु लाला किशनचन्द के चित्त की अस्थिरता न गई। उन्हें उठते बैठते सोते जागते दरोग़ा साहब की गुप्त मंत्रणा याद आ जाती थी। वे जितना ही उस पर विचार करते थे उतना ही उन्हे विकलता होती थी।

एक दिन मन बहलाने के लिए वे अपनी वाटिका में टहल रहे थे। दूर से उन्होंने शिवनाथ बाबू को आते देखा। उन्हें देखते ही वे धीरे धीरे अपने ग्रंथ-कुटी की ओर चले गए।

और एक किताब निकाल कर बड़े ध्यान से पढ़ने लगे। शिवनाथ बाबू ने उन्हें जाते हुए देख लिया था।

लाला किशनचंद जब कालिज में पढ़ते थे तभी से शिवनाथ बराबर उनके घर आया जाया करते। नौकर चाकर तक जानते थे कि शिवनाथ, किशनचंद के साथ पढ़ते हैं और उन के घनिष्ट मित्रों में से हैं। इसीलिए उनको कोठी में आने जाने में किसी प्रकार की रोक टोक न थी। वही व्यवहार आज तक चला आता है।

शिवनाथ बाबू को आते देख कर नौकरों ने झुक झुक कर सलाम किया। सब के अभिवादन का बड़े प्रेम से उत्तर देते हुए शिवनाथ बाबू सीधे किशनचंद के पढ़ने लिखने के कमरे की ओर जाने लगे। मार्ग में वृद्ध ड्योढ़ीवान् मिल गया, उस ने कहा,—"भैय्या, बहुत दिनों के बाद आए।" शिवनाथ बाबू ने खेद प्रकाश करते हुए कहा,—"क्या कहूँ, ऐसी झंझटों में पड़ा रहता हूँ कि एक पल भर की छुट्टी नहीं मिलती।" बुड्ढे ने बड़ी गम्भीरता से सिर हिलाते हुए कहा,—"हाँ भैय्या, आपने ऐसा काम ही उठा रक्खा है कि उसमें छुट्टी कहाँ?"

शिवनाथ ने कमरे में आकर देखा किशनचंद सिर झुकाए बड़े ध्यान से किसी पुस्तक का अध्ययन कर रहे हैं। शिवनाथ ने उनके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा,—"कोई उपन्यास है क्या? बड़े ध्यान से पढ़ रहे हो?"

किशनचंद ने घूम कर देखा शिवनाथ खड़े थे। उन्होंने बनावटी प्रसन्नता से कहा,—"आओ, आओ। बैठो। तुम तो ईद के चाँद हो गए। कभी दिखलाई ही नहीं पड़ते।"

पुस्तक शिवनाथ के हाथ में आ गई थी। खुले पृष्ठों को देख कर शिवनाथ ने हँसते हुए कहा,—"अच्छा तो यह कहिये पुस्तकों का विज्ञापन आप इतने ध्यान से पढ़ रहे थे? क्या कुछ नई पुस्तकें मँगाने का विचार है?"

जल्दी में किशनचंद विज्ञापन का पृष्ठ खोल कर बैठ गए थे। अब उन्हें अपनी बेसुधी का ध्यान आया। कुछ घबड़ा कर बोले,—"हाँ, योंहीं देखने लगा था, कोई अच्छी किताब हो तो मँगवा लूँ।"

शिवनाथ ने कहा,—"तुम टालसटाय की पुस्तकें मँगा कर पढ़ो, बड़ी सुन्दर हैं।

किशनचंद—"मैंने उनकी दो एक पुस्तकें पढ़ी हैं। उनका आदर्श तो बड़ा ऊँचा है। साधारण मनुष्य तो उनका अनुसरण कर नहीं सकते।"

शिवनाथ—"प्रयत्न करने से सब कुछ कर सकते हैं। तुम ही यदि चाहो तो अपनी प्रजा का बहुत कुछ दुख दूर कर सकते हो। परन्तु भाई बैठे २ तो कुछ नहीं होता।"

किशनचंद—"क्यों, मेरी प्रजा को कौन सा कष्ट है मेरे आसामी तो अड़ोस पड़ोस में सबसे अधिक खुशहाल हैं।"

शिवनाथ—"कभी जाकर उनकी दशा भी देखा है कि यहीं से बैठे बैठे बातें बनाते हो। बहुतों को तो दो दो दिन तक भोजन नहीं नसीब होता। उनके लड़के लंगोटी लगाये घूमते हैं। शरीर ढकने के लिये पास में वस्त्र तक नहीं है। रियाया की यह दशा हो रही है और तुम समझते हो कि वे खुशहाल हैं।

किशनचंद—"तो आप मुझे शिक्षा देने आए हैं?"

शिवनाथ—"नहीं, तुमको तुम्हारे कर्तव्य का ज्ञान कराने आया हूँ। इस समय मेरी बातें तुम्हें विष सी लगती होंगी परन्तु एक दिन तुम कहोगे कि मैं जो कुछ कहता था तुम्हारे हित के लिए कहता था।"

दरोगा साहब ने भी ऐसी ही बातें कहीं थीं; एक दिन आप कहिएगा कि मैंने जो कुछ कहा था सच कहा था। उनकी सारी बातें किशनचंद के मस्तिष्क में घूम गईं। उन्होंने रोष से कहा,—"शिवनाथ रहने दो, मैं तुम्हारा उपदेश नहीं सुनना चाहता। तुम्हारी मित्रता से मैं बाज़ आया।"

शिवनाथ अभी गाँव वालों के कष्ट का हाल कह भी नहीं पाये थे कि उन्हें किशनचंद ने झिड़क दिया। किशनचंद की ओर इस प्रकार के कटु व्यवहार की शिवनाथ को स्वप्न में भी आशा न थी। इससे उन्हें मानसिक वेदना हुई। वे और अधिक समय तक वहाँ नहीं ठहर सके। चलते चलते उन्हों ने कहा,—"किशन, मैं जाता हूँ। तुम मेरी बात नहीं सुनना चाहते, परन्तु इस प्रकार तुमने अपने मित्र को अपमानित करके अच्छा नहीं किया। तुम्हें इसके लिये एक दिन पश्चात्ताप होगा।"

सुहृद के व्यथित हृदय से निकली हुई इस बात को किशनचंद की दुराग्रही बुद्धि ने धमकी समझा। शिवनाथ चले गए। किशनचंद मुँह लटकाये हुए बैठे रहे।

किवाड़ की आड़ से किशनचंद की पत्नी देवबाला खड़ी हुई सब बातें सुन रही थी। अपने स्वामी के पुराने स्नेही शिवनाथ की अंतिम बात सुन कर उसका हृदय काँप उठा।



सातवाँ परिच्छेद।



देवबाला को उस रोज़ रात में किसी प्रकार भी नींद नहीं आई। वह पति की स्थिति से भली भांति परिचित थी। वह खूब जानती है कि हाकिम हुकमों को प्रसन्न करने के लिए उसके पति रियाया को कितना सता रहे थे। किशनचंद के हृदय में दबी हुई उपाधिप्राप्ति की अमृत लालसा भी उससे छिपी नहीं थी। उसने कई बार अपने पति को समझाया भी, परन्तु उसकी एक बात भी उनके मन में न गड़ी।

उस दिन शिवनाथ ऐसे हितैषी मित्र से स्वामी का बिगाड़ होते देख कर उसे अमंगल की आशंका हुई। उसी के ध्यान ने उसकी बुद्धि हर ली थी वह बार बार करवटें बदलती थी। परन्तु नींद निगोड़ी पास भी नहीं फटकती थी। रात के १२ बज गए फिर भी देवबाला को नींद नहीं आई। वह झरोखे की राह चंद्रमा को देखने लगी। जब उस ओर ताकते थक गई, तो एक ओर करवट बदल कर राम का नाम जपने लगी। शायद उसी में मन बट जाय और नींद आ जाय। कुछ देर के लिए झपकी लग गई, परन्तु फिर नेत्र खुल गए।

उसे ऐसा मालूम हुआ कि सामने कमरे में कोई खड़ा है। उसने सिर उठा कर ताका। एक मनुष्य की छाया धीरे धीरे उसके स्वामी के शयनागार की ओर बढ़ रही थी। उसने संदेह निवारण के लिए आँखें मल कर देखा कुछ दिखाई न पड़ा। वह फिर पड़ रही। उसने समझा कि सहसा नींद टूट जाने के कारण मुझे भ्रम हो गया है। परन्तु कुछ देर के बाद

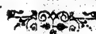


उसे कागज की खड़खड़ाहट सुनाई दी। उसके मन में फिर शंका पैदा हो गई। इतने में एक बिल्ली भागती हुई सामने से निकल गई। अवश्य ही बिल्ली के पद स्पर्श से कागज खड़का होगा, यह सोचकर उसका मन सुस्थिर हो गया। परन्तु दो ही मिनट के बाद किवाड़ खड़का और उसे किसी के चलने की आहट सुनाई दी। अब उससे न रहा गया। उठ कर दिया-सलाई जलाई। उसके प्रकाश में उसे एक लम्बा तड़ंगा मनुष्य हाथ में चमकता हुआ छुरा लिये दिखाई दिया। वह भय से चिल्ला उठी। नौकर चाकर जाग पड़े। थोड़ी देर में कोठी भर में खलबली मच गई। लालटेन और लाठी लिए हुए लोग चोर को ढूढ़ने लगे। नीचे ऊपर सब कहीं ढूढ़ डाला, चोर का कहीं पता नहीं चला।

लाला किशनचंद ने कहा,—"ढूढ़ो, यहीं कहीं होगा। इतनी जल्दी किधर से निकल जायगा।"

एक बार फिर दूने उत्साह से अनुसंधान आरम्भ हुआ। संदूक के पीछे, खाट के नीचे सब जगह देखा, परन्तु कोई सफलता होती नहीं दिखाई दी।

आँगन में एक कोने में बाँस का ढेर लगा हुआ था, डरते डरते नौकरों ने उसे भी हटाया, परंतु वहाँ भी कुछ न मिला। एक ने बड़ी अक्ल दौड़ा कर कहा,—"हो न हो इस फूस के ढेर के नीचे होगा।" निदान फूस का ढेर भी उलझा गया। उसमें भी किसी का पता न चला। भीरू नौकर जो अभी तक दूर ही से खड़े खड़े ढूढ़ने वालों का उत्साहवर्धन कर रहे थे अब निकट आकर बड़ा शौर्य्य प्रकाश करते हुए उस फूस के बिखरे ढेर को पैरों से रौंदने लगे।



आधे घण्टे तक ढूढ़ने के बाद भी जब चोर हाथ नहीं आया तो लोग आशाभग्न होकर अपने अपने स्थान को लौटने लगे। उसी समय एक नौकर ने चिल्ला कर कहा,—"यह देखो, यह वल्लरी के पीछे छिपा हुआ है।" उसी समय सब लोगों ने दौड़कर निकल भागने का उद्योग किया, परन्तु पीछे से दो बलिष्ट नौकरों ने उसकी कमर पकड़ छुरी हाथ से छीन ली और दो ने मिल कर उसकी मुश्कें बाँध दी।

अच्छी तरह से हाथ पैर बाँध कर नौकर चोर को लाला किशनचन्द के सामने ले आए। उसका मुख देखते ही वे चौंक पड़े। यह तो उन्हीं के गाँव का आसामी हीरासिंह था। हीरासिंह को लाला किशनचन्द अच्छी तरह जानते थे। सुंदर-पुर में वह सब से अधिक निडर और ईमानदार समझा जाता था। शिवनाथ बाबू उसे बहुत मानते थे। वह भी शिवनाथ बाबू को हृदय से चाहता था। सुनते हैं कि वह उनके लिए सदा जान देने को तैयार रहता था। किशनचंद ने समझा कि अवश्य ही शिवनाथ ने हीरासिंह को मेरी हत्या करने के लिए भेजा था। दरोग़ा साहब की बात अक्षरशः सत्य थी।

एक नौकर की ओर देख कर उन्होंने कहा,—"कोतवाली पर जाकर दरोग़ा हरसहाय से इस घटना का हाल कह दो। और उनसे कहना कि कृपा करके एक दो सिपाही लेकर तुरंत चले आवें अनुसंधान करने के बाद अपराधी को गिरफ्तार करके ले जायँ।"

नौकर आज्ञा पाकर चला गया। लाला किशनचन्द हीरा-

सिंह से कहने लगे कि,—"तुम यदि सच सच बात बतला दो कि तुम्हें यहाँ किसने भेजा था तो मैं तुम्हें छुड़वा दूँगा।"

हीरासिंह पहले तो चुप रहा परन्तु लाला जी के बार बार पूछने पर कहा कि,—"मैं स्वयं आया था। मुझे किसी ने भेजा नहीं था।"

किशनचंद—"तुम बिना मार खाये बताओगे थोड़े ही।"

हीरासिंह मौन रहा।

किशनचंद ने कहा,—"अब भी कहता हूं मान जाओ। सत्य बात बतला दो। तुम्हारे ऊपर आँच भी न आने पावेगी।"

हीरासिंह ने कहा,—"मुझे भेजेगा कौन, मैं अपने आप आया था।"

किशनचंद ने कहा,—"लात के देवता बात से थोड़े ही मानते हैं।" उन्होंने नौकरों से कहा,—"इसे जूतों से पीटो तब यह बतलावेगा।"

नौकरों ने हीरासिंह को मारना आरम्भ किया। उसके चिल्लाने की ध्वनि कोठी भर में गूँजने लगी। जब वह पीठ सुहराने लगता था तो उसके सर पर जूता पड़ता था और जब वह चोट बचाने के लिए सर पर हाथ रखता तो जूतों की बौछार उसके पीठ पर पड़ने लगती। अन्त में जब वह नौकर मारते मारते थक गए तो जिमीदार साहब ने फिर कहना आरम्भ किया,—"देखो अब भी यदि अपना भला चाहते हो तो बतला दो कि तुम्हें किसने भेजा था, नहीं तो मैं तुम्हें पुलीस के हवाले कर दूँगा। वे तुम्हारी बड़ी बुरी दुर्गति बनावेंगे। और यदि तुमने नाम बतला दिया तो तुम साफ बच



जाओगे। मैं थानेदार साहब से कह कहा कर मामला दबा दूँगा।"

लाला किशनचन्द हीरासिंह के साथ व्यर्थ खोपड़ी खाली कर रहे थे, कि इतने में दो सिपाहियों के साथ लिए हुए दरोग़ा हरसहाय आ उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी टिपंखी आँखों की पुतलियों को घुमाकर ज़रा होंठों पर मुसकुराहट लाकर कहा,—"देखिए मेरी बात सच निकली न?"

लाला किशनचन्द ने कहा,—"मैंने उस समय आपकी बात पर विश्वास नहीं किया। परन्तु अब तो मुझे आपकी बातें सर्वथा सच मालूम होती हैं।"

दरोग़ा साहब ने हीरासिंह की ओर तीक्ष्ण दृष्टि फेर कर कहा,—"तुम्हारे यह कर्म? जब चींटी के मृत्यु के दिन निकट आते हैं तो उसके भी पर जम जाते हैं। तुम्हें अगर मैं डामिल न भेजवाऊँ तो मेरा नाम हरसहाय नहीं।

हीरासिंह सब कुछ चुपचाप सुनता रहा था। वह एक शब्द भी नहीं बोला। दरोग़ा साहब कहते गए,—"सुंदरपुर वाले बहुत बिगड़ते जाते हैं। याद रक्खो मैं एक एक को जहन्नुम भेज कर तब दम लूँगा।"

लाला किशनचन्द ने कहा,—"मैं इससे कहता हूँ कि यदि तू यह बतला दे कि तुझे यहाँ किसने भेजा था तो मैं तुझे छोड़वा दूँगा, परन्तु यह कुछ बतलाता ही नहीं है।"

दरोग़ा साहब ने कहा,—"अजी जनाब यह ऐसे बतला देगा? उसे मार डालिए तब तो वह कबूलेगा ही नहीं।"

हीरासिंह के हाथों में हथकड़ी डाल देने के लिए एक सिपाही को आज्ञा दे दरोग़ा साहब घटना का विस्तार पूर्वक



हाल अपने दिनपत्रिका में लिखने लगे। जिमीदार साहब का बयान लिखने के पश्चात् उन्होंने नौकरों के बयान लिए।

चलते चलते वे लाला किशनचन्द को विश्वास दिलाते गए कि मैं हीरासिंह को काले पानी का दण्ड दिलवा दूँगा। साक्षियों के कथन द्वारा मैं यह सिद्ध करवा दूँगा कि उसने आपकी हत्या करने की इच्छा से आपके ऊपर आक्रमण किया था। परंतु कल सुबह होते ही आप अपने नौकरों को मेरे पास भेज दीजिएगा।

थानेदार साहब उसी समय हीरासिंह को लेकर चले गए। प्रभात होते ही लाला किशनचंद ने अपने नौकरों को दरोगा साहब के यहाँ भेजा। दरोगा साहब ने उन्हे खूब सिखाया पढ़ाया, परंतु जब न्यायालय में अभियोग चला तो प्रतिवादी के वकील की जिरह के सामने लाला किशनचंद के सिखे पढ़े नौकरों के पैर उखड़गए। हत्या करने के अभिप्राय से आक्रमण करने का अपराध सिद्ध नहीं हो सका। केवल चोरी करने का अपराध ही प्रमाणित हो सका।

जज ने हीरासिंह को दो वर्ष कठिन कारावास की सजा दे दी।



आठवाँ परिच्छेद ।



लोहे का वहतसला क़ैदी को कितना प्यारा होता है ? केवल वही तो उसके कुदिन का एक मात्र सखा होता है । उसीसे वह शौचादि करता है और उसी में वह भोजन पाता है और जब दिन भर कठिन परिश्रम करने के कारण थक जाता है तो कभी कभी शाम को एक स्थान पर आसन जमा उसे बजा कर कुछ गुनगुनाने लगता है। उस समय एक क्षण के लिए वह संसार के सारे दुखों को भूल जाता है।

परन्तु इस सुख को हीरासिंह कैसे अनुभव कर सकता था ? इस सुख का तो केवल वही अधिकारी है जिसको जेल में रहते वर्षों बीत चुके हैं और जो जेल-जीवन का आदी हो चुका है ।

हीरा का तो कृष्णवर्ण दाल देखकर जी मचलाने लगता था। मिट्टी मिली हुई रोटी उसके गले के नीचे नहीं उतरती थी। भूखे रह कर आधे पेट खाकर वह किसी तरह दिन काट रहा था । जब दंड की अवधि पर उसका ध्यान जाता था तो कष्ट से उसके आखों में आँसू भर आते थे ।

एक दिन गले में तख्ती लटकाए, पैर में बेड़ियाँ पहिने चक्की पीसते पीसते वह थक कर सुस्ताने लगा। अब भी कई सेर गेहूँ पीसने के लिए उसके सामने रक्खा था। उसके अंग प्रत्यंग में दर्द हो रहा था। उसका पार्श्ववर्ती साथी

अपना काम समाप्त करके बैठा हुआ था। हीरा सिंह की यह दशा देखकर उसे दया आ गई। उसने कहा,—"लाओ मैं तुम्हारा बचा हुआ गेहूँ पीस दूँ।"

हीरासिंह कृतज्ञता प्रकाश करता हुआ चक्की से अलग हट कर बैठ गया। वह मनुष्य जल्दी जल्दी गेहूँ पीसने लगा। गेहूँ पीसते ही पीसते उसने हीरासिंह का नाम ग्राम सब पूँछ लिया। हीरासिंह ने भी उसके विषय में उससे बहुत से प्रश्न किये। उसने जो कुछ बतलाया उसका सारांश यह था कि वह जाति का अहीर था। उसका नाम गंगादीन था। कभी उसने भी अच्छे दिन देखे थे? उस समय उसके पास सैकड़ों गौवें थीं। उसके घर में घी दूध की नदी बहती थी। परन्तु पुलीस वालों से शत्रुता करके वह पैसे पैसे का मुहताज हो गया। उसके घर वाले भी सब प्लेग में मर मिटे। उसका एक डाके के मामले में चालान हो गया और पाँच वर्ष के लिये उसकी सज़ा भी हो गई। साढ़े तीन वर्ष वह उसी जेल में बिता चुका था। अब उसके छूटने के दिन निकट आ गये थे।"

जब गंगादीन अपनी कहानी कह चुका तो हीरासिंह ने पूछा,—"तुम रहते किस गाँव में थे?"

गंगादीन—"पँडरी में"

हीरासिंह—"सुन्दरपुर के पश्चिम ओर?"

गंगादीन—"हाँ।"

हीरासिंह—"तुम छूटने के बाद क्या करोगे?"

गंगादीन—"मेरा उसी गाँव में एक छोटा सा घर है। उसी में रहा करूँगा। पेट पालने के लिए दो चार गाय बाँध लूँगा।"

गंगादीन ने बचा बचाया गेहूं बटोर कर चक्की में डालते हुए यह शब्द कहे थे। उसी समय एक वार्डर ने आकर कहा,—"हीरासिंह' तुम्हें जेलर साहब बुलाते हैं।"

हीरासिंह कपड़े झाड़ कर खड़ा हो गया। और मन में हज़ारों तरह की बातें सोंचते हुए वार्डरके साथ चलने लगा। कैदी प्रायः किसी अपराध के कारण जेलर साहब के सामने पेश किए जाते थे, और वहाँ पहुंचने पर बिना किसी न किसी प्रकार का दंड पाए लौट कर नहीं आते थे। हीरा सिंह ने इसी कारण डरते डरते जेलर साहब के कमरे में प्रवेश किया।

कुर्सी पर बैठे हुए जेलर साहब सिगरेट पी रहे थे। उनका गलमुच्छा हवा में धीरे धीरे हिल रहा था। सामने मेज़ पर काला आयल क्लाथ बिछा हुआ था। उस पर बहुत से रजिस्टर, दावात, पेंसिल और कलमें रक्खी हुई थीं। सामने एक लम्बी सी कापी खुली हुई पड़ी थी। उस पर पेपरवेट रक्खा था। फिर भी पृष्ठ हवा में फर फर करते हुए उड़ रहे थे।

हीरासिंह के कमरे में कदम रखते ही जेलर साहब ने मुंह से धुंवाँ फेंकते हुए कहा,—"हीरासिंह अगर तुम मेरी बात मानो तो जेल के कष्टों से मुक्त हो सकते हो।"

मरु भूमि में घोर तृष्णा से व्याकुल मनुष्य को जल प्राप्ति की आशा पाकर जैसी प्रसन्नता होती है जेलर साहब की बात सुन कर ठीक वैसी ही प्रसन्नता हीरासिंह को हुई। उसने कहा,—"हुजूर जो कुछ कहें मैं करने के लिए तैयार हूँ।

जेलर साहब ने पूंछा,—"तुम लड़ाई पर जाने के लिए तैयार हो?"

हीरासिंह ने एक क्षण कुछ सोच कर कहा,—" हाँ तैयार हूँ।"

जेलर साहब ने कहा कि "तो तुम मुक्त हो जाओगे और रात की गाड़ी से रावलपिंडी भेज दिए जाओगे। वहाँ कवायद सीखने के बाद तुम्हें जर्मनी से लड़ने के लिए फ्रांस जाना पड़ेगा।"

हीरासिंह की वह रात कितने आनन्द से कटी यह वही जानता था। दूसरे दिन वह जेल से मुक्त करके रावलपिंडी को भेज दिया गया।

दो तीन महीने बीत गए थे। उसके दिन बड़े चैन से कट रहे थे। फिर भी वह कभी कभी एकान्त में बैठकर अपने जेल के साथी गंगादीन की याद कर लिया करता था।



नवां परिच्छेद

कराँची बन्दरगाह में 'महाराजा' नाम का जहाज़ कई दिन से लंगर डाले हुए पड़ा था। इसका आकार भारी था और बाहर से देखने में वह बहुत पुष्ट मालूम होता था। उसके ऊपर बड़ी बड़ी तोपें चढ़ी हुई, थीं इससे उसकी आकृति और भी भयंकर हो गई थी।

जहाज़ छूटने के चार दिन पहले से कराँची में रेल द्वारा पल्टनों का आना आरम्भ हो गया। दो ही दिन में धड़ाधड़ तीन पल्टनें आ पहुँची। पहले ९३ नं० सिक्ख, फिर १३ नं० गोरखा और सब से अन्त में ८९ नं० सिक्ख आई। जो पहले पहुँच गए, उन्हें जहाज़ में बड़े सुभीते का स्थान मिल गया। अपनी अपनी इच्छानुसार जिसे जहाँ जी में आया अधिकार जमा लिया। ८९ नं० सिक्ख पल्टन सब से पीछे पहुँची थी। उसी को सब से अधिक कष्ट उठाना पड़ा।

बड़ा गोलमाल मचा हुआ था। झगड़े की नौबत तो कहीं आने नहीं पाती थी क्योंकि सब आपस के थे परन्तु गुल गपाड़ा इतना हो रहा था कि बगल में बैठे हुए मनुष्य तक की बात नहीं सुनाई देती थी। एक छोटी सी बात कहने के लिए भी चिल्लाना पड़ता था, अतः कोलाहल और बढ़ गया था।

सब अपने अपने मित्रों के समीप ही बैठने की चिन्ता में थे, इसलिए 'अमुक तुम कहाँ हो?' 'अमुक इधर आजा

बहुत जगह पड़ी है ।' इसी प्रकार की शब्दध्वनि से जहाज़ गूँज रहा था। किसी के बंदूक का कुंदा उसके पास में खड़े हुए साथी के सिर में लग गया तो उसने चिढ़कर कहा, 'इसे उधर क्यों नहीं रख देते ।' उसका बेग अपने स्थान से लुढ़का आता था। उसी के सँभालने में वह तन्मय होकर लगा था। बंदूक हटा कर अलग रखने का उसे अवकाश कहाँ था ?

इतने में किसी की गठरी में से लोटा ढुलकता हुआ निकल पड़ा। वह इधर उसे सँभालने लगा, उधर किसी का बिस्तर उसके सिर पर आ रहा। उसका साथी अपना सामान रख चुका था। अपने मित्र की यह दशा देख कर हँसते हुए बिस्तर का बंडल उठा कर उसने यथास्थान रख दिया।

बहुतेरे चिल्ला चिल्ला कर अपने संगी साथियों से कह रहे थे कि देख लो भाई सब सामान आ गया कि नहीं। मौलवी साहब के मकतब की भाँति यहाँ भी गिनती गिनना आरम्भ हो गयी। ऊँचे स्वर से उँगली हिलाते हुए लोगों ने गिनना शुरू किया १, २, ३, ४ ..... । किसी ने कहा, 'भाई, यह तो ७ ही हैं, आठ चाहिए। उसके साथी ने कहा, "वह देखो तुम्हारे पीछे पड़ा हुआ है उसे गिना ?" उसने कहा, "हाँ, आठ पूरे हो गए ।"

दो तीन घंटे तक यही हाल रहा। उसके बाद कुछ लोग तो बिछौना बिछा कर जहाज़ के भीतर ही लेट रहे और कुछ नगर में सफर की आवश्यक सामग्री खरीदने चले गए।

दूसरे दिन सुबह से ही जहाज़ के कर्मचारी दौड़ धूप करने लगे। यंत्रों की खटपट स्पष्ट सुनाई देने लगी। बीच बीच में माँझियों की पुकार भी सुनाई पड़ जाती थी। जहाज़



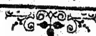
छूटने की तैयारी कर रहा था। जो बाहर सैर करने के लिए निकल गये थे। वे पहले ही आकर अपने स्थान पर बैठ गए थे। दस बजते बजते लंगर उठा, और जहाज़ चल पड़ा।

देखते ही देखते भारत की भूमि आँखों से ओझल होने लगी। बन्दर की छोटी छोटी डोंगियाँ समुद्र के वक्षस्थल पर धब्बे से प्रतीत होती थीं। कुछ ही देर में कराँची का धूम्र सदृश रूप भी अदृश्य होगया।

चारों ओर जल ही जल दिखाई देता था। जल की उन उत्तुंग तरंगों के बीच में उतना बड़ा जहाज़ एक तुच्छ प्राणी सा जँचता था।

कई दिन तक जहाज़ इसी तरह चलता रहा। दृश्य की शोभा एक सम बनी रही। प्रभात होता था। पक्षियों का कलरव तो कहीं सुनाई नहीं पड़ता था परन्तु सूर्य्य की किरणें अवश्य उस विस्तृत जल-तल के ऊपर नृत्य करने लगती थीं।

सायंकाल के समय डेक पर बहुत से लोग सूर्यास्त की शोभा निरखने के लिए एकत्र हो जाया करते थे। एक पल्टन वाले दूसरे पल्टन वालों से मिलते थे और परस्पर वार्तालाप किया करते थे। जब कुछ अँधेरा होने लगता था तो लोग फिर अपने अपने स्थान को लौटने लगते थे। आज सूर्यास्त होने के पहले ही बहुत से लोग डेक पर से चले गए थे। जहाज़ के अनुभवी कैप्टन ने सिर हिलाते हुए कहा,—"मालूम होता है आँधी उठने वाली है।" भावी झंझावात के भय से लोग दबक कर अपने अपने केबिन में जा बैठे। दो चार मनुष्य डेक पर टहल रहे थे। वे भी एक एक करके खिसक गए।



केवल एक अधेड़ मनुष्य रह गया, देखने में वह कसरती जवान मालूम होता था। शरीर उसका सुडौल और गठीला था। रूप भी कुछ बुरा नहीं था। वह टकटकी बाँधे हुए समुद्र की लहरों को देख रहा था।

कभी कभी सिर उठा कर वह अस्ताचल की ओर देख लेता था और फिर समुद्र की ओर निहारते हुए किसी ध्यान में डूब जाता था।

इसी समय इस मनुष्य को किसी ने अपना साथी समझ कर पीछे से पुकारा,—"नत्थू।" उसका ध्यान टूट गया। घूम कर जो देखा तो वह आश्चर्य्य से स्तम्भित होगया। हीरा सिंह उसके सम्मुख खड़ा था। उसके मुख पर भी विस्मय के भाव झलक रहे थे।

संतसिंह ने आह्लादित होकर पूछा,—"तुम कैसे आगए।"

हीरासिंह ने कहा,—"मैं ९३ नं० की पल्टन में हूं वह इसी जहाज़ से फ्रांस जा रही है। ८९ नं० की पल्टन भी तो इसी जहाज़ से जा रही है शायद तुम उसी में हो?"

संतसिंह—"हाँ मैं उसी में हूँ। परन्तु मुझे आश्चर्य्य तो इसका है कि तुम फौज में कैसे भर्ती हो गए।"

हीरासिंह ने कहा,—"इसकी कथा लम्बी चौड़ी है। कहीं अच्छी तरह बैठ कर सुनो तो कहूं।"

संतसिंह ने उत्सुकता से पूछा,—"पहले यह बतलाओ गोविन्द तो अच्छा है?"

हीरासिंह ने कहा,—"जिस दिन मैंने उसे अन्तिम बार देखा था उस दिन उसकी दशा बहुत सुधर गई थी। शिवनाथ बाबू रात रात भर जग कर उसे दवा देते थे। भला ऐसे पुण्यात्मा का परिश्रम क्यों न सफल होता।"



संतसिंह ने कहा,—"शिवनाथ बाबू के उपकारों से हम लोग कभी उऋृण नहीं हो सकते ।"

अंधकार बढ़ता चला आता था । आकाश-मंडल में कालिमा छा गई थी । संतसिंह की बात समाप्त भी नहीं हो पाई थी कि आँधी बहने लगी । समुद्र की उग्र लहरें जहाज़ को लीलने के लिए अग्रसर होने लगीं । जहाज़ डग-मगा रहा था ।

संतसिंह ने कहा,—"इधर आओ अपने कमरे में चलें ।" हीरासिंह उनके पीछे पीछे हो लिया । संतसिंह ने अपने स्थान पर जाकर देखा कि तूफान की प्रबलता के कारण लोग घबड़ाए हुए थे । उनकी ओर उन्होंने ध्यान भी नहीं दिया । अपने बिस्तर को फैला कर हीरासिंह से बैठने के लिए कहा । दोनों मित्र बैठ कर बातें करने लगे । हीरासिंह ने अपनी कहानी आरम्भ की :—

"तुम्हें वह रात्रि अच्छी तरह से याद होगी, जब तुम गाड़ी से कूद कर घर भाग आए थे । उसी रात्रि की बात कहता हूं । हमलोग चार पाँच मनुष्य खंड़हर वाले मकान में बैठकर लाला किशनचन्द, हैदर और दारोगा साहब की हत्या करने की सलाह कर रहे थे । उस दिन आज ही को भाँति आँधी चल रही थी और पानी बरस रहा था । उसी समय न जाने कहाँ से शिवनाथ बाबू आ पहुँचे । उनसे हम लोगों ने बात छिपाना उचित नहीं समझा । सब कुछ साफ़ साफ़ कह दिया । वे बहुत देर तक समझाते बुझाते रहे । मैंने एक बार फिर कहा कि यह लोग दुष्टता की मूर्त्ति हैं इनको मार डालने से पृथ्वी का भार कम हो जायगा । इस पर शिवनाथ बाबू ने हम लोगों को बहुत डाँटा फटकारा । उसके बाद हम लोग

शिवनाथ बाबू को अपने कष्ट का हाल लिखाने लगे इतने में गाँव में शोर गुल सुनाई पड़ा। शिवनाथ बाबू को साथ में लेकर हमलोग घटना-स्थल पर पहुँचे। दूर ही से पुलीस वालों को देख कर मैंने समझा कि इतनी रात्रि में वे किसी बुरी नियत से ही आए होंगे। मैं लाठी लिए आगे बढ़ा इतने में शिवनाथ बाबू ने आकर रोक दिया।"

हीरासिंह का वाक्य पूरा भी नहीं होने पाया था कि बड़ी ज़ोरों से बिजली कड़की। जहाज़ महावेग से हिलने डुलने लगा। कैप्टन चिल्ला चिल्ला कर माँझियों को आज्ञा दे रहा था। इस बार इतना प्रबल झोंका आया कि संतसिंह ने समझा कि जहाज़ उलट गया। वह एक ओर को बिलकुल झुक गया था। जब जहाज़ फिर सीधा हो गया तो कुछ समय के लिए लोगों के जान में जान आ गई। हीरासिंह कहने लगे,—"उसके बाद का हाल तुम जानते ही हो। तुम्हारे चले जाने के बाद रात भर शिवनाथ बाबू तुम्हारे स्त्री को धीरज बँधाते रहे। दो दिन के बाद पुलीस वाले आकर उन सब लोगों को जिन्होंने उस रोज रात को उनको घेरा था गिरफ्तार कर ले गए। एक मैं ही बच गया। उसके कई दिन के बाद शिवनाथ बाबू ज़िमींदार साहब से मिलने गए। सुना, उनसे कुछ कहासुनी हो गई। हम लोगों के कष्टों पर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। उल्टे लाला जी शिवनाथ बाबू पर बिगड़ गए। लाचार होकर वे बिचारे लौट आए। उसी दिन मैंने तुम्हारे घर पर जाकर सुना कि ज़िमींदार साहब ने तुम्हारा छप्पर जलवा दिया। तुम्हारी स्त्री रो रही थी। मैं रोज रोज सुनता चला आ रहा था कि कोई लड़ाई का चंदा न दे सकने के कारण खूब पीटा गया, किसी का बैल खुलवा

लिया गया। उस दिन मेरे धैर्य्य का बाँध टूट गया। मैं क्रोध से पागल हो गया। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं किशनचंद को जीवित न छोड़ूँगा। दिल में यह ठान कर मैंने घर में जाकर एक छुरे पर धार रक्खी और उसे हाथ में लिए उसी रात्रि को ज़िमीदार साहब की कोठी के पिछवाड़े से दीवाल पर चढ़ कर घर के भीतर कूद पड़ा।"

आगे जो कुछ हीरासिंह ने कहा वह हमारे पाठक पहले ही से जानते हैं। जिस समय हीरासिंह अपनी कथा कह कर उठा उस समय भी प्रभंजन का रोष कम नहीं हुआ था। जहाज़ में सवार समूह सशंकित होकर निस्तब्ध बैठा था।

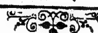
हीरासिंह अपने कमरे में जाने के लिए तैयार हो गया। संतसिंह ने कहा,—"देखो न, इतने दिन एक ही जहाज़ में रहे और एक बार भी नहीं मिले।" हीरासिंह ने कहा,—"हम लोगों को इसकी ख़बर ही कहाँ थी?"

संतसिंह ने कहा,— "अच्छा कल अवश्य मिलना।"

हीरासिंह ने हँसते हुए कहा,—"यदि इस आँधी से बच कर जीवित रह गए तो अवश्य साक्षात होगी।"

हीरासिंह के चले जाने के बाद संतसिंह विस्तर पर लेट रहा। परन्तु इस तरह कब तक लेटा रह सकता था। आँधी पानी का प्रकोप इतना बढ़ा कि लोगों के हृदय काँपने लगे।

सैकड़ों मील पानी ही पानी भरा था। आकाश से भी पानी ही गिर रहा था। घोर अंधकार छाया हुआ था। कड़क के साथ बिजली चमक उठती थी। प्रलय का सा समय सामने उपस्थित था। संतसिंह उठ कर बैठ गए। उस



घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे जब कि जहाज़ धीरे धीरे उदधि के उदर में पहुँचने लगेगा।

बैठे बैठे कई घंटे बीत गए। आँधी की प्रबलता अब कम हो गई थी। बिजली का चमकना भी धीरे धीरे बन्द हो गया। दूसरे दिन जब प्रभात हुआ तो आकाश निर्मल हो गया था। जहाज़ के कई यंत्र और स्तंभ आँधी में टूट गए थे उनकी मरम्मत आरंभ हो गई। उस दिन सायंकाल के समय जब लोग परस्पर मिले तो इसी की चरचा चलती रही।

दिन पर दिन बीतने लगे। रोज़ ही हीरासिंह और संतसिंह एक दूसरे से मिलते और घंटों गप्पें लड़ाते। जहाज़ पर बैठे बैठे उनकी तबीयत ऊब उठी थी। जिस दिन दूर से उन्हें मार्सलीज़ की भूमि दिखाई दी उस दिन आनन्द से उनके हृदय खिल उठे।

बहुत से लोग उसी ओर उँगली उठा कर संकेत कर रहे थे।



दसवाँ परिच्छेद ।



मार्सलीज़ के बन्दरगाह पर सैकड़ों फ्रेंच ललनाएँ भाँति भाँति के उपहार लिए भारतीय वीरों के स्वागत के हेतु उपस्थित थीं। उनके जहाज़ से उतर कर बाहर आते ही प्रफुल्लबदना स्त्रियों ने हर्षध्वनि के साथ बड़े प्रेम से भेंट समर्पित किया।

बन्दर से कई मील की दूरी पर पल्टनों के ठहरने का प्रबंध किया गया था। तीनों पल्टनें एकही साथ रक्खी गईं। सामान आदि यथास्थान रखने के बाद लोग सैर करने के लिए निकल पड़े।

नगर की शोभा देख कर सब चकित हो गए। साफ़ चौड़ी सड़कों के दोनों ओर उच्च अट्टालिकाओं की छबि कुछ और ही थी। दूकानें भी बड़ी विचित्रता से सजी हुई थीं। सभी वस्तुओं से निरालापन टपकता था। दिन भर टहलते टहलते भी लोग नहीं थकते थे। फ्रेंच लोग भी अपने सहायतार्थ इतने सुदूर देश से लोगों को आए हुए देख कर पुलकित हो जाते थे।

इन तीनों पल्टनों को मार्सलीज़ में उतरे हुए अभी एक ही सप्ताह बीता था कि प्रधान सेनापति का आदेश आया कि एक पल्टन बेठून की ओर भेज दो। ६३ नं० की सिक्ख पल्टन को बेठून जाने के लिए तैयार हो जाने की आज्ञा दी



गई। हीरासिंह यह समाचार सुन कर संतसिंह के पास गया और उनके गले में लिपट कर कहने लगा,—

"संतसिंह, मैं जाता हूँ। मेरी पल्टन के लिए वेदून जाने की आज्ञा मिली है। अब फिर मिलने की कौन आशा है?"

संतसिंह का गला भर आया, उसने कहा,—"जाओ भैया ईश्वर तुम्हें विजयी करें। मैं भी पीछे पीछे आता हूँ। आज ही कल में हमारे लिए भी हुक्म आने वाला है।"

हीरासिंह की पल्टन उसी दिन रात की गाड़ी से चली गई। दो दिन के बाद ८९ नं० की पल्टन के लिए भी मोरचे पर जाने का हुक्म आ गया।



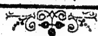
ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

शिवनाथ बाबू गुजरानवाला में ही रहते थे । उनका मकान नगर के बिल्कुल बाहर था । उन्होंने विवाह नहीं किया था । उस मकान में अकेले ही रहते थे, इस लिए वह मकान छोटा होता हुआ भी उनके रहने के लिए काफ़ी बड़ा था ।

पहले वह अपनी विधवा मौसी के साथ गुजरानवाला ज़िला के एक छोटे से गांव में रहा करते थे । जब वे स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद कालिज में भर्ती हुए तब उनसे फ़स्ट ईयर में ही लाला किशनचन्द से मित्रता हो गई । उनकी मौसी के पास अधिक धन नहीं था, परन्तु इतना अवश्य था कि वे रूखी सूखी रोटी खाकर शिवनाथ बाबू को कालिज में पढ़ा सकती थीं । उनके कोई पुत्र भी नहीं था । माता पिता हीन शिवनाथ को उन्होंने छोटेपन ही से पाला था, इसी लिए शिवनाथ पर उनका अनन्य प्रेम था ।

जब शिवनाथ एफ़, ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो कर बी० ए० में आया तो उनकी मौसी को जितनी प्रसन्नता हुई थी उतनी उनके इष्ट मित्रों को भी नहीं हुई । उस दिन उन्होंने मिठाई मँगा कर गांव भर के लड़कों में वितरण की ।

थर्ड इयर में परीक्षा देकर शिवनाथ बाबू गर्मी की छुट्टियों में अपने गांव पर चले आए । उन दिनों वहाँ हैजे की बीमारी बड़े जोरों के साथ चल रही थी । दुर्भाग्य वश उनकी मौसी



बीमार हो गईं उन्हे कै दस्त आने लगे। शिवनाथ ने बड़ी दौड़ धूप की, परन्तु वे चार ही घंटे में संसार से चल बसीं।

जिस गांव में उन्होंने अपना लड़कपन बिताया था वही गांव उनकी मौसी की अनुपस्थिति में उन्हें काटने दौड़ता था। वे कुछ ही दिनों में अपना सारा माल मता बेच कर गुजरानवाला चले गए और वहाँ नगर के बाहर एक छोटा सा मकान खरीद कर रहने लगे। थोड़े ही दिनों में उन्हें स्थानीय हाई स्कूल में ४५) रु० मासिक की जगह मिल गई। इस से उनका निर्वाह होने लगा। एक साल के बाद वे प्राइवेट बी० ए० की परीक्षा में बैठे और थर्ड डिवीजन में पास भी हो गए। परन्तु उनकी नौकरी अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। हेडमास्टर साहब से उनकी सदा खटकती रहती थी। उनके विचारों की स्वतंत्रता हेडमास्टर साहब को बिल्कुल नापसन्द थी। आख़िर एक दिन शिवनाथ बाबू से उनसे चख़चख़ हो ही गई। उसी दिन शिवनाथ बाबू ने नौकरी से विसर्जनपत्र दे दिया।

तब से वे ट्यूशन करके पेट पालते थे। बाकी समय दीन दुखियों की सहायता में बिताते थे। नगर भर में, और आस पास के गांवों में, वे इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि छोटे छोटे बच्चे तक उनका घर जानते लगे थे। शिवनाथ बाबू ने प्रजा का पक्ष लेकर उनकी अनेक अत्याचारों से रक्षा की थी। इस लिए वे हाकिमों और खुशामदी राजकर्मचारियों की आंखों का काँटा बन गये थे।

उन्हें रात में बहुधा घर के बाहर रह जाना पड़ता था। जब कभी कोई काम आ अटकता तो वह अपना सारा सुख त्याग कर उसमें जी जान से लग जाते थे। एक दिन वह

थके माँदे रात को बारह बजे घर लौट कर आए। खाट पर पड़ते ही नींद आ गई।

रात में उन्हें घर में खटपट की बार बार आवाज़ सुनाई देती थी। परन्तु वे आलस्य के कारण चारपाई पर से उठते नहीं थे। नींद के मारे लाख चेष्टा करने पर भी उनकी आंखें नहीं खुलती थीं। वे समझते थे कि मैं स्वप्न देख रहा हूं।

दूसरे दिन वे सुबह बहुत देर में उठे। आँगन में धूप खूब फैल गई थी। शौचादि से निवृत्त होकर दतुअन करते हुए कोठे पर गए। देखा, कमरे की खिड़की खुली पड़ी थी। सोचा कि रात में देर करके घर आया था जल्दी में खिड़की बन्द न की होगी। खिड़की की सिटखिनी लगा कर वे नीचे उतर आए। घर की सारी चीजें जहाँ की तहाँ रक्खी हुई थीं। उनका शक मिट गया।

शीघ्र ही स्नानादि करके वे केवल एक कुरता और धोती पहिन गले में चद्दर डाल घर से निकल पड़े। बाहर से उन्होंने द्वार पर ताला लगा दिया। आज सुबह उठने में उन्हें देर हो गई थी, इसलिए एक इक्के वाले को बुलाकर उन्हों ने उसके हाथ में दस पैसे दिए और कहा मुझे बाबू चुन्नीलाल बैरिस्टर के यहाँ पहुँचा दो।

वे बैरिस्टर साहब के छोटे लड़के को पढ़ाया करते थे। बैरिस्टर साहब केवल उन पर मुग्ध ही नहीं थे वरन उनके विशुद्ध आचरण के कारण उनके भक्त हो गए थे। उनके यहाँ से शिवनाथ को ४०) रु० मासिक मिला करते थे और त्योहार के दिन खीर और पूड़ी की दावत भी हुआ करती थी।



शिवनाथ बाबू ठीक समय पर ट्यूशन पर पहुँच गए। बालक पुस्तक लिए हुए पहिले ही तैयार था, उन्होंने किताब खोल कर अर्थ पूछना आरम्भ किया। कुछ देर के बाद ऊब कर वे ग्रामर पढ़ाने लगे। परन्तु उनका मन न लगा। अंगरेजी की कविता खोल कर बैठ गए और उसका भावार्थ समझाने लगे, परन्तु उनका चित्त अस्वस्थ ही बना रहा। वह आध घंटे पहले ही से उठ कर चल दिये।

चद्दर का कोना उंगली में लपेटते हुए वे किसी ध्यान में मस्त अपने घर की ओर चले जा रहे थे कि पीछे से किसी ने उन्हें स्पर्श किया। पीछे घूम कर देखा तो सिर से पैर तक वर्दी पहिने पुलीस का सिपाही सामने खड़ा हुआ दिखाई पड़ा। उसने कहा,—"बाबू जी आपके नाम सर्च वारंट है। आपके घर की खानातलाशी होगी।"

शिवनाथ बाबू बिना कुछ कहे सुने उसके साथ चलने लगे। मकान पर आकर उन्होंने देखा कि दरोगा हरसहाय कई सिपाहियों को लिये हुए वहाँ पहले ही से उपस्थित हैं। शिवनाथ बाबू को देखते ही उन्होंने कहा,—"बाबू साहब ज़रा घर का ताला तो खोलिए।" शिवनाथ बाबू ने दरोगा साहब की बात का बिना उत्तर दिए ताला खोल दिया। मकान के सामने बहुत से दर्शकों की भीड़ लग गई थी। उनमें से कई प्रतिष्ठित मनुष्यों को साथ लिये हुए पुलीस वाले भीतर घुसे। प्रत्येक कमरा छान डाला, कहीं किसी चीज़ का पता नहीं चला। अंत में भंडारे के बगल वाली कोठरी खोली गई। उसमें लकड़ी भरी हुई थी। लकड़ियों के हटाने पर उसके नीचे जो सामान लोगों ने छिपा हुआ देखा उसे देख कर सब हक्का बक्का हो गए।

एक अत्यंत सुन्दर काठ का बक्स था। और भी बहुत सी कीमती चीज़ें थीं। चाँदी का गिलास, गिलौरीदान, गुलाबपाश आदि आदि! बक्स खोलने पर उसमें केवल एक घड़ी के अतिरिक्त और कोई आभूषण नहीं मिला।

दरोगा साहब इन सब वस्तुओं की प्रदर्शनी बनाकर लोगों को व्याख्यान देने लगे,—"देखा आप लोगों ने इन देश-भक्त की करतूत। चोर और लुटेरों का गोल बनाए घूमते हैं। इधर उधर से चंदा इकट्ठा करके उसे हज़म कर जाते हैं। ऐसे लोगों से देश का कहीं उद्धार हो सकता है।"

शिवनाथ चुपचाप खड़े हुए सब सुन रहे थे। बोलना व्यर्थ था, इसलिये वह मौन ही रहे। प्रमाण आँखों के सामने रहने पर भी किसी को विश्वास नहीं हुआ कि शिवनाथ बाबू चोरी करवाते हैं। दरोगा साहब ने कोठे पर जाकर घर को देखा उसके बाद नीचे कमरों की देख भाल करने के पश्चात् रिपोर्ट—तैयार की और गवाह भी वहाँ पर बैठे बैठे बना लिये।

इसके बाद उन्होंने एक सिपाही की ओर संकेत करके कहा,—"शिवनाथ को हथकड़ी पहिनादो।"

शिवनाथ गिरफ़्तार करके थाने पर लाये गए। उन्हें उसी दम हवालात में बंद कर दिया गया। हरसहाय के दिल की मुरादें आज बर आईं।



बारहवाँ परिच्छेद ।

शिवनाथ बाबू का मुक़दमा आरम्भ होते होते बहुत दिन लग गए। बाबू चुन्नीलाल बैरिस्टर ही उनकी ओर से पैरवी करने के लिए खड़े हुए थे। शिवनाथ को ज़मानत देकर छुड़ाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु ज़मानत मंजूर नहीं हुई। क्या किया जा सकता था—विवशता थी।

बाबू चुन्नीलाल हवालात ही में उनसे मिले और उनके मुँह से सुना कि जब उस दिन सुबह उठ करके वे जो कोठे पर गए थे तो कमरे की खिड़की उन्हें खुली हुई मिली थी। उस रोज़ रात में वे गौरी ग्राम में कार्य वश ग्यारह बजे तक ठहरे रह गए थे। घर पहुँचते पहुँचते बारह बज गए थे। यह बातें सुनकर चुन्नीलाल जी इस घटनाचक्र का सारा रहस्य समझ गए। और वे लौट कर बड़े परिश्रम के साथ शिवनाथ बाबू की निर्दोषिता के प्रमाण जुटाने में लग गए।

सोमवार के दिन ग्यारह बजे ज़िलाधीश के सामने मुकद्दमा पेश हुआ। इजलास में मनुष्यों की खूब भीड़ थी। स्कूल के लड़के बिना छुट्टी लिए भाग आये थे।

पहली गवाही दरोग़ा साहब की हुई। आसामी के वकील के पूछने पर उन्होंने कहा कि—"चोरी का माल शिवनाथ के मकान से बरामद होने के दो दिन पूर्व उन्हें खबर मिली थी, कि सेठ रघुवरदयाल के मकान से कुछ चाँदी की चीज़ें और आभूषण का बक्स उठ गया था।

बा० चुन्नीलाल बैरिस्टर ने पूछा,—"आपको शिवनाथ बाबू पर कैसे शक हुआ ?"

दरोगा साहब—"मैंने इन्हीं दिनों में गौरी ग्राम के बहुत से बदमाशों को इनके यहाँ आते जाते देखा था।"

बैरिस्टर साहब—"इससे क्या, शिवनाथ के यहाँ तो हर तरह के मनुष्य आया जाया करते थे। उसी दिन वे गौरी में एक झगड़े का निर्णय करने के लिये गए थे। आपने यह कैसे समझ लिया कि ये मनुष्य उनके यहाँ किसी बुरी ग़रज़ से ही आते थे।"

दरोग़ा साहब—"चोरी होने के कुछ दिन पूर्व मैंने इन लोगों को सेठ रघुबरदयाल के घर के चारों ओर चक्कर काटते देखा था।"

बैरिस्टर साहब—"आपने इन लोगों को वहाँ घूमते अपनी आखों से देखा था"।

दरोगा साहब—"जी हाँ अपनी आखों से"।

बैरिस्टर साहब—"कब देखा था ?"

दरोगा साहब—"जब शादी में मैं उनके यहाँ दावत खाने गया था।"

बैरिस्टर साहब—"आपकी आँखें बड़ी चतुर हैं। दावत की बहार देख लेती हैं और चौकसी का भी काम करती हैं। उस पर से तुर्रा यह कि किसी को पता भी नहीं चलने पाता।"

बैरिस्टर चुन्नीलाल ने दरोगा साहब की टिपंखी आखों पर ही यह फिक़रा कसा था, परन्तु दरोग़ा साहब कुछ समझ न पाए। यह सोच कर कि बैरिस्टर साहब उनकी प्रशंसा कर रहे हैं, उन्होंने बड़े गर्व से कहा,—"पुलीसवाले इतने सजग न रहें तो उनका काम कैसे चले।"

बैरिस्टर साहब ने कहा,—"आप से मैं जिरह कर चुका। अब आप जा सकते हैं।"

दरोगा साहब के चले जाने के बाद सेठ रघुवर दयाल की गवाही हुई।

बैरिस्टर साहब ने पूछा,—"आप के यहाँ कब चोरी हुई।"

सेठ जी ने कहा,—"विवाह के चार पाँच दिन के बाद।"

बैरिस्टर साहब—"आपकी कौन कौन सी चीज़ें चोरी गई?"

सेठ जी—"चाँदी का गिलास, गिलौरीदान, गुलाबपाश और आभूषण का बक्स।"

बैरिस्टर साहब—"आभूषण के बक्स में कौन कौन सी चीज़ें रक्खी थीं।"

सेठ जी—"सिर्फ़ एक घड़ी थी?"

बैरिस्टर साहब—"वह कै दिन से उसमें रक्खी हुई थी?"

सेठ जी—"सात आठ दिन से।"

बैरिस्टर साहब—"शेष गहने कहाँ थे?"

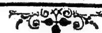
सेठ जी—"विवाह शादी के दिन थे। सब आभूषण स्त्रियाँ पहने हुई थीं।"

बैरिस्टर साहब—"परन्तु विवाह तो चार दिन पहले ही समाप्त हो चुका था।"

सेठ जी—"इससे क्या हुआ? क्या जिस दिन विवाह समाप्त हो जाय उसी दिन स्त्रियाँ गहने उतार देती हैं?"

बैरिस्टर साहब—"होता तो ऐसा ही है।"

सेठ जी—"हमारे यहाँ ऐसा नहीं होता है। आप के यहाँ होता होगा।"



दो एक अन्य गवाहों से जिन्होंने घटनास्थल पर माल बरामद होते हुए देखा था बैरिस्टर चुन्नीलाल ने जिरह करने के बाद अन्तिम गवाह मैकू कहार से पूछा,—"तुमने अपनी आँखों से शिवनाथ बाबू के यहाँ से माल बरामद होते देखा था ?"

मैकू कहार—"हाँ हुजूर मैंने चाँदी का गिलास, गुलाब-पास, गिलौरीदान और एक सन्दूक बरामद होते देखा था।"

बैरिस्टर साहब—"सन्दूक में तुमने क्या देखा था ?'

मैकू कहार—"एक घड़ी। वह खट खट बोल रही थी।"

बैरिस्टर साहब—"सन्दूक में और कुछ देखा था ?"

मैकू कहार—"नीचे के खाने में दो बालियाँ पड़ी हुई थीं। दरोगा साहब ने नीचे का खाना खोला था तब मैंने उसे देखा था। उन्होंने कहा,—"देखो और तो इसमें कुछ नहीं है ?" फिर उन्होंने जल्दी से सन्दूक बन्द कर दिया।"

इस वाचाल मनुष्य की जिरह के बाद उस दिन कचहरी बरख़ास्त हो गई।

दूसरी पेशी पर फिर अधिक संख्या में मनुष्य अभियोग देखने के लिए एकत्र हुए। बहुत से लोग एक घंटे पहले ही से वहाँ पहुँच गए थे।

शिवनाथ बाबू ने अपने बयान में उस रात्रि की सारी घटना कह सुनाई। उसके पश्चात् सफ़ाई के गवाह पेश होने लगे। रतनू ने कहा,—" मैंने ऊपर की खिड़की के पास से उस कोठरी तक जहाँ से माल बरामद हुआ था मनुष्यों के पदचिन्ह देखे थे।"

सरकारी वकील ने पूछा—" तुमने कब वह निशान देखे थे ?"

रतनू ने कहा,—"जब मैं दरोगा साहब के साथ मका के भीतर गया था ?"

सरकारी वकील—"तुमने दरोगा साहब से उसी दम क नहीं बतलाया ।"

रतनू—"जो कुछ वे पूछते थे वही हम बताते जाते थे हम अपनी ओर से कुछ नहीं कहते थे ।"

इसके बाद रमज़ान ने आकर कहा,—" जब मैं सुबह सड़क पर झाड़ू देने आ रहा था तो मैंने शिवनाथ बाबू के कोठे पर की खिड़की खुली देखी थी ।"

सकटू हलवाई ने कहा कि,—"मैंने जब अपनी दूकान सात साढ़े सात बजे सुबह खोली थी तब शिवनाथ बाबू अपने कमरे की खिड़की बन्द कर रहे थे ।"

गौरीग्राम के चार मुख्य आदमियों ने कहा,—" उस दिन शिवनाथ बाबू ग्यारह साढ़े ग्यारह बजे तक गौरीग्राम में एक झगड़ा तै करने के लिए ठहरे रहे थे ।"

सरकारी वकील ने जिरह करके कोई विशेष लाभ नहीं उठाया । शिवनाथ बाबू के मकान से माल बरामद होने की बात पर ज़ोर देते हुए उन्होंने शिवनाथ बाबू को कठिन से कठिन दण्ड देने के लिए अदालत से प्रार्थना की ।

आसामी के वकील ने कहा,—" शिवनाथ बाबू बिल्कुल निरपराध हैं । यदि उन्होंने माल चोरी करवाया होता तो उन्हें खिड़की के ऊपर से उसे ले जाने की क्या आवश्यकता थी । बात स्पष्ट है कि जब वे गौरी से बारह बजे लौट कर आए और बेखबर होकर सो गए उस समय किसी ने उस माल को घर के भीतर पहुँचा दिया । सुबह उन्हें खिड़की खुली हुई मिली और उसे उन्होंने स्वयं बन्द किया जैसा कि



रमज़ान भंगी और सकटू हलवाई की गवाही से सिद्ध है। उन्हें कुछ शंका भी हुई परन्तु उस समय उस पर उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। माल बरामद होते समय घड़ी का चलते रहना भी संशयजनक बात है। सेठ जी ने कहा था कि आभूषण के सन्दूक में केवल एक घड़ी थी परन्तु मैकू का कहना है कि उसने नीचे के खाने में बालियाँ देखी थीं। मालूम होता है यह माल शिवनाथ बाबू को फँसाने के लिए उनके घर में रखवाया गया था। जल्दी में बक्स में बालियाँ रह गई थीं और घड़ी भी चलती हुई रख दी गई थी।"

उस दिन की बहस के बाद मजिस्ट्रेट साहब ने अग्रिम मंगल का दिन निर्णय सुनाने के लिए नियत किया।

लाला चुन्नीलाल जी की बहस सुन कर सबको आशा हो गई थी कि शिवनाथ बाबू अवश्य छूट जायँगे। इस-लिए उस दिन बड़ी भीड़ हुई। मैदान मनुष्यों से भर गया था। बहुत से लोग जो पहली पेशियों में नहीं आये थे आज उपस्थित थे।

ठीक साढ़े दस बजे मजिस्ट्रेट साहब आए, अदालत में सन्नाटा छा गया। मजिस्ट्रेट साहब ने निर्णय पढ़ना आरंभ किया,—"शिवनाथ के पास बराबर चोर बदमाश आया करते थे। उसके घर से चोरी का माल बरामद हुआ। बहुत से लोगों ने माल बरामद होते देखा। खिड़की से माल ले जाकर शिवनाथ ने असामान्य चतुरता दिखाई है। उसने इसीलिए ऐसा किया होगा ताकि पकड़े जाने पर वह बहाना बना सके। घड़ी का चलते रहना और बालियों का बक्स न मिलना शिवनाथ की निर्दोषिता का प्रमाण नहीं हो सकता। सम्भव है उसने घड़ी निकाल कर चलाई हो



और उसे फिर वैसी ही रख दी हो। बाली ऐसे छोटे आभूषण का ध्यान न रहना भी सम्भव है। इसीलिए सेठ जी ने अपनी गवाही में उसका जिक्र नहीं किया, मैं शिवनाथ को दोषी समझता हूँ। पढ़ा लिखा आदमी होकर उसने ऐसा दुष्कर्म किया इसलिये मैं उसे तीन वर्ष कठिन कारावास का दण्ड देता हूँ।

लोगों ने निर्णय सुन कर दाँतों तले उँगली दबाई। घर लौट आने पर भी लोग यही कहते रहे कि—"घोर अन्याय हुआ।"

दारोगा हरसहाय ने उस दिन घर जाकर शोरवे के साथ दो रोटियाँ अधिक खाईं।

संयोग की बात, कुछ ही दिनों के उपरान्त उदर पीड़ा से हरसहाय की मृत्यु हो गई। लोगों ने कहा,—"आख़िर ऊपर ईश्वर भी तो है?" परन्तु शिवनाथ बाबू की सज़ा के एक वर्ष के बाद लाला किशनचन्द रायसाहब कैसे हो गये?

तेरहवाँ परिच्छेद।

चारों ओर कोहरा छाया हुआ था। भूमि पर दो फ़ीट बर्फ़ जम गई थी, जाड़े के मारे दाँत से दाँत लड़ रहे थे। खाइयों में कीचड़ ही कीचड़ हो गई थी। ऐसे समय में नीवे चैपल से दो तीन मील की दूरी पर सिक्खों की सेना पड़ी हुई थी।

भारतवर्ष में घोर शिशिरकाल में भी इतना जाड़ा नहीं पड़ता। बर्फ़ तो केवल हिमालय के गगनचुम्बी शिखर पर ही देखने को मिलता है। ऐसी असामान्य ऋतु का सामना करते हुए जिस बीरता और धीरता के साथ हिन्दुस्तानी सिपाही रणक्षेत्र में डटे हुए थे उसकी उनके योरोपीय लड़ाके साथी भी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे।

कई लड़ाइयों में विजय प्राप्त करके आज पूरे डेढ़ साल के बाद संतसिंह की सेना ने यहाँ आकर डेरा डाला था। इस डेढ़ साल के अरसे में उन्होंने जितनी विचित्र बातें देखीं वे फिर कभी उनको अपने इस जीवन में देखने की आशा नहीं करते थे। आकाश में से धुवें की आड़ से गोला-वर्षण, सर्च लाइट की तेज़ रोशनी, विषैली गेसों का भयंकर प्रभाव आदि आदि अनेकों नूतन बातों से वे खूब परिचित हो गए थे। बहुत दिन तक उस देश में रहने के कारण वहाँ के आचार व्यवहार का भी उन्हें ज्ञान हो गया था। अब उन्हें पहले की तरह वहाँ बुरा नहीं लगता था।

स्वदेश लौटने की सारी आशा छोड़कर वे मस्त रहने लगे थे। इस लिए उस दिन दोपहर को वे हाथ में बाँसुरी लेकर छावनी से दूर निकल आए और एक स्थान पर बैठ कर उसे बजाने लगे।

मुरली की मधुर ध्वनि, फ्लैंडर्स के फ्रंट पर दूर तक सुनाई देने लगी। चार वर्ष पहले कौन जानता था कि कृष्ण की वह प्यारी वंशी फ्रांस की भूमि पर भी एक बार अपना रंग जमावेगी।

जब एकाएक बिगुल की आवाज सुनकर संतसिंह का ध्यान टूटा तो उन्हें स्मरण नहीं था कि वह कितनी देर से वहाँ बैठे हुए बन्शी बजा रहे थे।

वे शीघ्रता से उठ कर छावनी के पास गए। वहाँ जाकर देखा कि लोग मार्च करने की तैयारी कर रहे हैं। अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर संतसिंह भी पंक्ति में आकर खड़ा हो गये। जेनरल फाउलर ने मार्च करने की आज्ञा दी। पल्टन नीवे चैपल की ओर चल पड़ी।

यह स्थान बड़े मार्के का था। इस पर जर्मनों ने अपना अधिकार जमा लिया था। गाँव के चारों ओर खाइयाँ खोद कर उसमें प्रूशिया के चुने हुए वीर पड़े थे। काटेंदार तारों से उन्होंने अपने मोरचों को अच्छी तरह सुरक्षित कर रक्खा था। इसके अन्दर घुस कर जर्मनों को परास्त करना कोई साधारण काम नहीं था।

संतसिंह की सेना पूर्व के पार्श्वभाग से मुड़ कर चलने लगी। दूसरे बगल से भी आक्रमण करने का निश्चय हो चुका था। परन्तु सब से प्रथम संतसिंह की फ़ौज को ही आक्रमण करना था।

सेना अभी अधिक से अधिक दो फरलांग चली होगी कि शत्रु की ओर से गोलियों की बौछार होने लगी। फाउलर ने अपने सिपाहियों को लेट जाने का हुक्म दिया। लोग लेट गए, कुछ समय तक गोलियोंकी बौछार और जारी रही, फिर बन्द हो गई।

धीरे धीरे सिक्ख पल्टन फिर आगे बढ़ने लगी। जब वे जर्मन मोरचे के बिल्कुल निकट आ गए तो फाउलर ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त कर दिया। पहली पल्टन ने बड़े बेग से हमला किया—बाकी सैनिक पीछे रह गए। जब तक वे लोग खाइयों से दूर रहे तब तक तो जर्मन उन्हें अपनी बन्दूक का निशाना बनाते रहे। परन्तु जब वे तारों में से निकल कर नितान्त निकट पहुँच गए तो बड़े बड़े हेलमेट पहिने हुए लम्बे चौड़े प्रूशियन्स हाथ में संगीन चढ़ी हुई बन्दूकें लिए हुए खाइयों से बाहर निकल आए। घमासान युद्ध होने लगा।

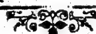
इसी समय गाँव के दूसरी ओर से तोपों के गर्जन का शब्द सुनाई दिया। जेनरल फाउलर समझ गए कि उधर से गोरखों ने भी आक्रमण कर दिया है। थोड़ी देर में तोपों की गर्जन बन्द हो गई। केवल आकाश में उसका धुवाँ छाया हुआ था, जिससे कोहरे की कालिमा और भी गाढ़ी हो गई थी। अब उन्हें गोरखों की जय ध्वनि स्पष्ट सुनाई दे रही थी। बीच से पठान भी आक्रमण करके आगे बढ़ रहे थे। परन्तु जेनरल फाउलर केसिपाहियों के हाथ पैर ढीले पड़ रहे थे। सब से कठिन मोरचे पर विजय प्राप्त करने का भार उन्होंने अपने सिर पर लिया था। जीती जिताई बाज़ी हारते देख कर उन्हें कष्ट अनुभव हो रहा था।



उनके बहुत से सैनिक काम आ चुके थे, जो थोड़े से बच रहे थे वे भी अधिक समय तक शत्रु का सामना करने को सामर्थ्य नहीं रखते थे। जिन थोड़े से सिपाहियों को उन्होंने पीछे छोड़ दिया था उन्हीं के पौरुष पर जीत और हार निर्भर थी।

इन शेष सिपाहियों को भी उन्होंने अन्त में आक्रमण करने की आज्ञा दी और स्वयं उनके साथ चल पड़े। उन बीरों के पहुँचते ही हतोत्साह सिपाहियों में नई जान आ गई। फिर से घोर संग्राम होने लगा प्रूशियन्स तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे द्विगुणित पराक्रम से लड़ने लगे। लोग आहत हो हो कर धराशायी होने लगे। एक प्रूशियन ने दो सिक्खों को मार गिराया और उसने जेनरल फाउलर को लक्ष्य बना कर अपनी संगीन तानी ही थी कि संतसिंह के संगीन की चोट खाकर वह पृथ्वी पर लोटने पोटने लगा। इसी समय पठानों और गोरखों की जयध्वनि और निकट सुनाई दी। जेनरल फ़ाउलर सोच रहे थे कि यदि किसी प्रकार यह लड़ाई कुछ समय तक और जारी रह सके तो सहायता पहुँच जायगी और विजय प्राप्त हो जायगी, परन्तु यदि कहीं इसी बीच हमारे सैनिकों के पैर उखड़ गए तो सर्वनाश हो जायगा।

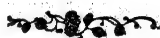
यह सोच कर वे बड़ी बीरता से लड़ने लगे। उनके सैनिकों की संख्या कम हो गई थी फिर भी वे बराबर युद्ध करते ही जा रहे थे। थोड़ी ही देर में जेनरल फ़ाउलर चारों ओर से जर्मन सैनिकों के बीच में घिर गए। प्रूशियन योद्धाओं ने गरज कर कहा,—"आत्मसमर्पण कर दो।" इसी समय संगीन लिए हुए पीछे से संतसिंह उन पर टूट



पड़ा। उसने एक ही क्षण में चार शत्रुओं को मार गिराया। जेनरल फ़ाउलर के प्राणों की रक्षा तो उसने कर ली, परन्तु उसके ऊपर चारों ओर से आक्रमण होने लगा। उसका सारा शरीर आहत हो गया। वह भूमि पर गिर पड़ा।

गोरखे और पठान बिल्कुल निकट आ गए थे। जो थोड़े से जर्मन सैनिक बच रहे वे कुछ समय तक लड़ने के बाद भाग खड़े हुए। नीवे चैपल अंगरेजों के हाथ में आ गया।

जेनरल फ़ाउलर ने संतसिंह के निकट आकर देखा, उसकी साँस अब भी चल रही थी। लोगों ने मि० फ़ाउलर को इस विजय पर बधाइयाँ दीं। उन्होंने सिर हिलाते हुए कहा,—"बधाइयों का अधिकारी मैं नहीं हूं। नीवे चैपल का विजेता, सामने भूमि पर आहत पड़ा हुआ है।"



चौदहवाँ परिच्छेद।



संतसिंह संज्ञाशून्य अवस्था में ही समरभूमि से उठा कर डेरे में लाए गए। डाक्टर ने उनके घावों को धोकर पट्टी बाँध दी। थोड़ी ही देर में उन्होंने नेत्र खोल दिये। जेनरल फाउलर पास ही खड़े थे। संतसिंह ने क्षीण स्वर में पूछा,—"मैं कहाँ हूँ?"

मि० फाउलर ने कहा,—"तुम अपनी छावनी में हो। चुपचाप आराम से पड़े रहो।"

संतसिंह ने आँखें बंद कर लीं। उन्हें बड़ी पीड़ा हो रही थी। जेनरल फ़ाउलर ने उनकी सेवा शुश्रूषा के लिए दो आदमी नियुक्त कर दिये। और चलते समय कहते गए कि यदि कोई आवश्यकता पड़े तो तुरन्त डाक्टर साहब को बुला लेना।

जब दूसरी बार जेनरल फ़ाउलर संतसिंह को देखने आये तो वे पहले से कुछ अच्छे थे। मि० फ़ाउलर को सामने खड़े हुए देख कर उन्होंने धीरे से पूछा,—"क्या नीवे चैपल विजय हो गया?"

जेनरल फ़ाउलर ने कहा,—"हाँ, नीवे चैपल पर हम लोगों का अधिकार हो गया है। उस विजय के लिए हम लोग तुम्हारे आभारी हैं।"

संतसिंह ने कहा,—"ऐसा न कहिये, यह सब आपके पुण्य का प्रताप है।"

जे० फ़ाउलर—"तुमने मेरे प्राणों की रक्षा की है। मैं तुम्हारे इस उपकार से कभी उऋण नहीं हो सकता।"

संतसिंह—"ऐसी बातें कह कर आप मुझे क्यों लज्जित करते हैं। मेरा शरीर यदि आपके काम आ जाय तो मैं अपना अहोभाग्य समझूंगा।"

जेनरल फ़ाउलर ने कहा—"अधिक बातें करने से तुम्हारी तबियत बिगड़ जाने का डर है। मैं जाता हूँ फिर आऊंगा। तुम्हारे इन असामान्य शौर्य्य के कृत्यों को मैं आजीवन नहीं भूल सकता। तुम्हें इसके लिए मैं पुरस्कार दिलवाऊंगा।"

जेनरल फ़ाउलर इतना कह कर जल्दी से चले गए। संतसिंह की तबियत सहसा घबड़ाने लगी। उन्हें ज्वर चढ़ आया। अभी थोड़ी देर हुए केवल हरारत थी। डाक्टर ने आकर नाड़ी देखी और मुंह लटकाए हुए कहा दशा अच्छी नहीं है।

दिन प्रति दिन संतसिंह की अवस्था अधिक शोचनीय होती जाती थी। अंत में यही निर्धारित हुआ कि उन्हें सेंट वेनन्ट के अस्पताल में भेज दिया जाय। बड़े आराम से वे वहाँ पहुँचा दिये गये।

सब प्रकार की सुख की सामग्री यहाँ एकत्रित थी। कई पंक्तियों में चारपाइयाँ पड़ी हुई थीं। गुलगुले गद्दे पर दूध के समान स्वच्छ चद्दर बिछी हुई थी। रोगियों का मन बहलाने के लिए पियानो रक्खा हुआ था। उसे बजाकर कभी कभी मधुर कंठवाली स्त्रियाँ रोगियों का दिल खुश किया करती थीं।

बड़े बड़े राजघराने की कोमलांगनाएँ बड़े उत्साह से आहत वीरों की सेवा कर रही थीं।

इसी अस्पताल में संतसिंह कई महीने पड़े रहे। घाव भर जाने के बाद भी ज्वर उनका पीछा नहीं छोड़ता था। बड़ी मुश्किलों से बुख़ार दूर हुआ। परन्तु वे बहुत निर्बल हो जाने के कारण अधिक चल फिर नहीं सकते।

धीरे धीरे उनके शरीर में शक्ति आने लगी। जब वे बिलकुल स्वस्थ हो गए तो सुना कि उन्हें स्वयं सम्राट् जार्ज पंचम अपने हाथों से 'विक्टोरिया क्रास' प्रदान करेंगे।

वे खूब सजधज कर विक्टोरिया क्रास लेने गये। जिस समय उन्हें सम्राट् ने वह सुवर्णपदक दिया उस समय उनके आनन्द की सीमा नहीं रही।



पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

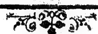


विक्टोरिया क्रास प्राप्त किये हुए संतसिंह को कुछ दिन नहीं बीतने पाए कि युद्ध समाप्त हो गया। उन्हें अपनी सेना में सम्मिलित हो जाने की आज्ञा मिल गई थी।

जेनरल फ़ाउलर की अध्यक्षता में वह सेना फ्लैंडर्स के रणक्षेत्र से मार्सलीज़ को लौट आई। इस समय ऋतु बहुत सुहावनी थी शीत की अधिकता नहीं थी। नव विकसित फूल की भाँति हर्षोत्फुल्ल रमणियाँ अपने देश के सौभाग्य पर खुशी मनाती घूमती थीं। सारांश यह कि सारे देश में आनन्द और आह्लाद छाया हुआ था।

संतसिंह भी खुशी के मारे फूले नहीं समाते थे। परन्तु उन्हें खुशी विजय की नहीं वरन् स्वदेश लौटने की थी। मातृभूमि इस छोटे से शब्द में कितना जादू भरा रहता है, कितनी मधुरिमा रहती है। यह वही जान सकता है जो अपने देश से सहस्रों मील के अंतर पर हो और जिसके रास्ते में अनन्त सागर हिलोरें मार रहा है।

जिस समय मार्सलीज़ से उनका जहाज़ छूटा, उस समय उन्हें प्रतीत हुआ कि इतने थोड़े समय में उन्हें फ्रांस की भूमि से कितना मोह हो गया था। जो स्थल उनकी आँखों के सामने से नाचता हुआ प्रति पल पीछे हटता जाता था उसे फिर इस जीवन में वे न देख सकेंगे यह बात उन्हें भली भाँति मालूम थी। इसलिये जबतक मार्सलीज़ बन्दर छोटे



धीरे धुँधला होकर अंतरिक्ष के पीछे छिप नहीं गया, वे डेक पर खड़े होकर अनिमेष लोचनों से उसकी ओर देखते रहे। अंत में आकर अपने स्थान पर बैठ गए।

जहाज़ बराबर पानी को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था। ज्यों ज्यों दिन कटते जाते थे संतसिंह का धैर्य छूटता जाता था। वे सोचते थे वह कौन सा दिन होगा जब वे गोविन्द को गोद में लेकर प्यार करेंगे, और उनकी स्त्री उनसे लड़ाई की कथाएँ पूछेगी।

इसी प्रकार के ध्यान में मग्न वे जहाज़ के कमरे में बैठे हुए थे कि उनका एक साथी हाथ में एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लेकर आया। उसके पहले ही पृष्ठ पर हिन्दुस्तानी सिपाहियों के रंगीन चित्र थे। उसे संतसिंह ने देखकर कहा,—"इसमें क्या लिखा है, तनिक मुझे भी दिखाना।"

उस मनुष्य ने कहा,—"इसमें उन सिपाहियों के नाम लिखे हैं जो इस लड़ाई में मारे गए हैं। मुझे एक फ्रेंच महिला ने यह पुस्तक दी थी। उसने इसका नाम—'आनर्ज़ लिस्ट' बताया था।"

संतसिंह ने पूछा,—"तुम इसे पढ़ सकते हो ?"

उस मनुष्य ने बड़ी शान से कहा,—"क्या तुम समझते हो मैं अंगरेज़ी नहीं पढ़ा हूं ?"

यह कह कर बिना संतसिंह के उत्तर की प्रतीक्षा किए वह किताब खोल कर सामने बैठ गया और एक एक अक्षरों को जोड़ जोड़ कर नाम पढ़ने लगा "२६ नं० पी यू, एन—पन; जे, ए—जा; बी, आई, बी—पंजाबी; एस, यू, बी, ए—सूबे; डी, ए, आर—डार, सूबेदार; एन, ए, टी,



एच. ए, नत—नत् था; एस, आई, एन—सि; जी, एच, घ—सिंह । सूबेदार नत्था सिंह……

एक ही नाम पढ़ने में उसने इतना समय लगा दिया और उसे इतने उच्च स्वर से पढ़ा कि संतसिंह घबड़ा गए। उन्होंने अधीर होकर कहा,—"बस रहने दो। यदि इसमें कहीं तुम्हें ६३ नं० सिक्ख पलटन के लोगों के नाम मिलें तो पढ़ कर सुनाओ।"

अपने अंगरेज़ी विद्या के ज्ञान की धाक जमाने का ऐसा अच्छा अवसर पाकर भला वह मनुष्य उसे हाथ से क्यों जाने देता। वह तन्मय होकर ६३ नं० सिक्ख पल्टन की सूची खोजने में लग गया। घंटों वह पृष्ठ इधर उधर उलटता रहा, परन्तु फिर भी कहीं उस नंबर के पल्टन का उल्लेख न मिला। भद्द हो जाने के भय से उसके ललाट पर श्रम-विन्दु चुहचुहा आए, वह अपनी मान रक्षा के लिए यह मिस करने ही जा रहा था कि इसमें उस नं० की पल्टन का हाल छपा ही नहीं है कि उसे एक पृष्ठ पर नीचे की ओर ६३ नं० सिक्ख लिखा हुआ दिखाई पड़ गया। वह आनन्द से उछल पड़ा और मत्थे से पसीने की बूंद पोंछ कर मूँछ पर हाथ फेरते हुए बोला,—"यह देखो यह ६३ नं० सिक्ख पल्टन के मृत सिपाहियों के नाम लिखे हुए हैं।"

संतसिंह ने उत्सुकता से पूछा,—मिल गया?" उसने बड़े गर्व से कहा,—"भला मिलेगा नहीं तो साला जायगा कहाँ?"

संतसिंह की उत्कंठा बढ़ गई। उन्हों ने कहा-" ज़रा नाम पढ़ कर सुनाओ तो।"

उसने पहले की भाँति फिर एक एक वर्ण पर उँगली रख कर सिर हिला हिला कर पढ़ना आरम्भ किया।

उसके इस पठनशैली पर संतसिंह मन ही मन जल रहे थे। परन्तु इस भय से कि कहीं कुछ कहने पर यह उठ कर चला न जाय बड़े धैर्य्य के साथ नामावली सुन रहे थे। बड़ी देर में उसने नाम पढ़ कर समाप्त किए:—

मेहरसिंह, मूजरसिंह, सुरजनसिंह, देवीसिंह, सौदागरसिंह, जगतसिंह, बूटासिंह, भगतसिंह इत्यादि।

इसमें तो कहीं हीरासिंह का नाम नहीं आया। तो वह जीवित है यह जान कर संतसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने संशय मिटाने की इच्छा से उस मनुष्य से फिर पूछा,—"इसमें कहीं हीरासिंह का नाम तो नहीं है ?"

उसने बड़ी जल्दी से नामावली पर दृष्टि दौड़ाते हुए कहा,—"नहीं।"

इतने शीघ्र उत्तर दे देने का संतसिंह के ऊपर क्या प्रभाव पड़ा, यह जानने के लिए वह उनकी मुख की ओर देखने लगा। संतसिंह को प्रसन्नवदन देखकर उसने समझा कि वे उसकी विद्वत्ता का लोहा मान गए। उसने दाँत निकाल कर कहा,—"देखा न मैं कितनी जल्दी पढ़ लेता हूँ।"

संतसिंह ने उसको प्रसन्न करने के लिए कहा,—"हाँ, तुम तो अंगरेज़ी के पंडित मालूम होते हो।"

अंग्रेज़ी का वह धुरंधर विद्वान थोड़ी देर के बाद वहाँ से उठ कर ऐंठता हुआ चला गया। संतसिंह वहीं बैठे रहे।

प्रतीक्षा, उत्कंठा, आशा, निराशा, दुख सुख सब को धता बताता हुआ बलवान समय आगे बढ़ता ही जाता है। वह न तो लोगों के आनन्दोत्सव में भाग लेने के लिए ठहरता है न किसी से संवेदना प्रकट करने के लिए। कई सप्ताह बीत गए। आख़िर भारत की भूमि दूर से दृष्टिगोचर हुई।



धीरे धीरे बम्बई का विशाल बन्दर स्पष्ट दिखाई देने लगा। जहाज़ ने लंगर डाल दिया। छोटी छोटी नावें आईं, उनपर चढ़ कर लोग बन्दर में उतरने लगे। सबसे प्रथम बम्बई में पदार्पण करने के लिए सभी लालायित थे। जिस समय संतसिंह ने बम्बई की भूमि पर पग रक्खा उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आए।

नगर के बाहर ही बाहर वे अपने कैम्प में पहुंच गए। उस रोज दिन भर उन्हें चीज़ें उठाने धरने से ही छुट्टी न मिली। रात्रि में वे दो चार साथियों के साथ शहर में सैर करने के लिए निकले।

बाज़ार की शोभा पूर्ववत थी। बिजली के प्रकाश से सारा नगर जगमगा रहा था क्रय विक्रय बराबर जारी था। परन्तु चारों ओर एक प्रकार की सनसनी फैली हुई थी। लोग परस्पर बातें कर रहे थे कि कल हड़ताल होगी। सारे हिंदुस्तान में कल दूकानें बंद होंगी। हर स्थान पर सभाएँ होंगी और क़ानून भंग की तैयारी की जायगी।

संतसिंह के कुछ समझ में न आया। यह दो ही दिन में क्या कायापलट हो गई। वह बड़े ध्यान से दीवालों पर चिपके हुए विज्ञापनों को पढ़ता चला जाता था। उसके साथी भी चकित हो गए थे। उसने एक रास्ते चलने वाले से उसके विषय में पूछा भी, परन्तु उसने यह सोचकर कि सिपाहियों के मुँह कौन लगे एक उड़ता सा जवाब दे दिया। वह बाज़ार से कुछ मिष्ठान्न ख़रीदने के बाद डेरे में लौट आया।

दूसरे दिन उसने नगर में जाकर देखा कि सारी दूकानें बंद हैं। लोग झुण्ड के झुण्ड एक ओर को बराबर चले जा रहे हैं। पूछने पर उसे पता चला कि नगर के निकट खुले मैदान में

एक बृहत् सभा होने वाली है। संतसिंह ने भी बहुत दिनों से सभा नहीं देखी थी। जब वह अपने गाँव में था तो बहुधा आर्य्य-समाज के उत्सवों में सम्मिलित हुआ करता था। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि चल कर इस उत्सव को देखें निदान वह अपने दो चार साथियों को साथ में लिए हुए जलसे के मैदान में पहुंच गया। वहाँ पहले ही से मनुष्य जमा हो गए थे। संतसिंह को पीछे ही खड़ा रहना पड़ा।

अभी वक्तागण नहीं आए थे। एक तख़त पर मेज़ और कुर्सी रक्खी हुई थी। वही बार बार हटाई और रक्खी जाती थी। कभी वह पीछे खिसका दी जाती, कभी आगे। परन्तु किसी प्रकार भी प्रबंधकर्ताओं का मन नहीं भरता था। व्याख्यानदाता के मंचपर आने तक प्रबंध पूरा नहीं हो पाया। किसी प्रकार उलटा सीधा टेबिलक्लाथ बिछाकर उसपर एक टेबिल-लैम्प रखकर लोग हट गए। भीड़ के बीच बीच में किटसन लैम्प रक्खे हुए थे।

ज्योंहीं कोई नेता आता दिखाई देता था जनता में खलबली मच जाती थी। सात बजे सभापति आकर कुर्सी पर बैठ गए। एक युवक जो सिर पर साफा बाँधे हुए था और शरीर पर सादा कोट पहिने हुए था भाषणमंच पर आकर खड़ा हो गया। उसने बोलना आरम्भ किया—

"………हमारी राजभक्ति का यही हमें पुरस्कार मिल रहा है। हमारे दासत्व की शृंखला को और भी जकड़ा जा रहा। हमारे भाइयों ने फ्रांस और मेसोपटामियाँ की भूमि पर ब्रिटिश साम्राज्य के लिए अपना रक्त पानी की भाँति बहाया, उसका इस प्रकार हमें बदला चुकाया जा रहा है!



हमारे ऊपर रौलट बिल का प्रहार हुआ है! क्या आप वीरता से इसका सामना करने के लिए तैयार हैं?.........

जनता ने उत्तर दिया—"अवश्य, अवश्य।" उसने फिर कहना प्रारंभ किया,—"......तो आप सत्याग्रह के लिए तैयार हो जाइए। शान्ति के साथ कानून भंग करने लिए कमर कस कर खड़े हो जाइए........."

वह युवक बैठ गया। दूसरा आया। उसने गंभीर स्वर में बोलना शुरू किया, "......हमारे अनुनय विनय की अवहेलना की गई। हमारे मानापमान का कुछ विचार नहीं किया गया। हमारे उपकारों का भो खूब ही हमें प्रतिकार मिला। न दलील, न वकील, न अपील, इन कानूनों से हमारे आन्दोलन का स्वागत किया गया। अब हमारे पास अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए—अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए—सिवाय निष्क्रिय प्रतिरोध, सविनय कानून भंग के और कोई उपाय नहीं रहा। माता आपकी ओर सजल नेत्रों से देख रही है। उसकी लाज रखने के लिए सत्याग्रही बनिए स्वतंत्रता के सिपाही बनिए। परन्तु सोच लीजिए, खूब सोच लीजिए तब कदम आगे रखिए। यह मार्ग कंटकों से भरा हुआ है। इसमें शान्ति के साथ जेल जाना होगा। समय पड़ने पर बिना दूसरे के ऊपर हाथ उठाए मरना होगा जो यह शर्तें स्वीकृत करते हों वह आकर अपने नाम लिखा जायँ।"

इतना कहने के बाद वह वक्ता भी बैठ गया। बहुत से लोग उधर ही झुक पड़े। सैकड़ों मनुष्य नाम लिखवाने के लिए टिहुनी से आगे वालों को हटाते हुए भीतर घुसे जाते थे! परन्तु अधिकांश मनुष्य नगर की ओर लौट पड़े थे।

संतसिंह भी अपने डेरे पर चला आया । उस दिन, रात्रि में उसे बहुत देर तक नींद नहीं आई । वह बिस्तर पर पड़ा पड़ा न जाने क्या सोचता रहा ।



सोलहवाँ परिच्छेद ।



उत्साह दूध के उबाल की भाँति होता है। आया और चला गया। संतसिंह पहले तो यही नहीं जानता था कि वक्तागण कह क्या रहे हैं। थोड़ी देर के बाद उसे बात कुछ समझ में आई। कुछ उत्साह भी हुआ। लौट कर उसी विषय पर रातमें विचार करता रहा। परन्तु जब सुबह उठा तो वह सब बातें भूल गईं, केवल घर की बात ही मन में रह गई। उसके कई दिन के बाद तम्बू के सामने एक बेंच पर बैठा हुआ वह सोच रहा था कि दो एक दिन में घर जाने की छुट्टी मिल जायगी। इतने में उसके एक खिन्न-मन मित्र ने आकर कहा,—'सुना।'

संतसिंह ने पूछा—"क्या?" उसने कहा,—"पंजाब में बलवा हो गया है। हम लोगों को वहाँ चलना पड़ेगा अभी छुट्टी नहीं मिलेगी।"

निकट ही बिगुल की आवाज़ सुनाई दी और सामने जेनरल फ़ाउलर आते हुए दिखाई दिए। सब लोग पंक्ति बना कर परेट पर आकर खड़े हो गए। जेनरल फ़ाउलर ने कहा—"तुम लोगों की राजभक्ति पर मुझे अभिमान है। तुम लोगों ने जिस वीरता से जर्मन्स से लड़ कर उन्हें हराया वह मुझे सदा स्मरण रहेगा। इस समय कुछ राजविद्रोहियों ने पंजाब में लूट मार मचा दी है। उनके दमन के लिए तुम्हें गुजरानवाला चलना होगा। मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि तुम

लोग अपने घरों को जाने के लिए बड़े उत्सुक हो रहे हो। परन्तु जहाँ इतने दिनों तक तुम लोगों ने धैर्य्य रक्खा वहाँ थोड़े दिनों के लिए और सही। अधिक समय नहीं है, आज रात ही में हम लोग यहाँ से कूँच कर देंगे।"

उसी समय खड़ खड़ करती हुई खच्चर गाड़ियाँ आने लगीं। उन पर असबाब उठा उठा कर रक्खा जाने लगा। कारतूसें विशेषतया अधिक संख्या में रख ली गईं। खच्चर-गाड़ियाँ एक के पीछे दूसरी स्टेशन की ओर चलने लगीं। कुछ सिपाही उसी के ऊपर कूद कर बैठ गए और कुछ कंधे पर बंदूकें रख कर उसके पीछे पीछे चलने लगे।

स्टेशन पर रोज़ की तरह आज चहल पहल नहीं थी। सशस्त्र पुलिस चारों ओर से स्टेशन को घेरे हुए खड़ी थी। दिन ही में संतसिंह और उनके साथियों ने यह किम्बदन्ती सुनी थी कि बम्बई में कई स्थान पर दंगा फ़साद हो गया है परन्तु उन्हें इस पर विश्वास नहीं आया था। जेनरल फ़ाउलर की बात सुनकर उसका शक बढ़ गया। पुलिस की इस चौकसी को देख कर उन्हें विश्वास हो गया कि बात सच्ची है।

असबाब प्लेटफार्म पर पहुँचा दिया गया। गाड़ी लेट थी। संतसिंह प्लेटफार्म पर ही टहलने लगे। वे टहलते टहलते सोच रहे थे कि हमारे वृद्ध पिता सन् सत्तावन के गदर का जिक्र किया करते थे क्या उसी प्रकार का भयंकर रक्तपात तो मुझे इन आँखों से नहीं देखना पड़ेगा, फिर स्त्री, पुत्र से मिलने की क्या आशा, न जाने उसकी क्या दशा हुई हो। पिता जी कहा करते थे कि ग़दर के दिनों सामने थाली में परसा हुआ भोजन छोड़ कर भागना पड़ता था! हर समय



जान जोखिम में रहती थी! तो क्या अब स्त्री पुत्र से भेंट न हो पावेगी?

वे इसी प्रकार तर्क वितर्क कर रहे थे कि गाड़ी आने की घंटी बजउठी। संतसिंह ने सामने आँख उठाकर देखा फ़ाउलर साहब सिगार पीते हुए टहल रहे थे। परन्तु उनके बदन पर चिन्ता छायी हुई थी—उनका मुख गंभीर था। गाड़ी आकर प्लेटफ़ार्म पर खड़ी हो गई। पीछे के कई डिब्बों से यात्री निकाल कर आगे बिठाए गए। वे डिब्बे फ़ौजी सिपाहियों के लिए रिज़र्वड कर दिये गए। सब ने सामान आदि रखने के बाद अपने लम्बे शरीर पटरियों पर फैला दिए।

इसी प्रकार गाड़ियाँ बदलते हुए उन्होंने पंजाब की सीमा में प्रवेश किया। पंजाब में एक स्टेशन पर इन्हें आठ घंटे रुकना पड़ा। बलवा करने वालों ने रेल की पटरियाँ बहुत दूर तक उखाड़ डाली थीं और तार काट दिए थे। जेनरल फ़ाउलर गुजरानवाला जल्दी पहुँचने के लिए बड़े बिकल थे। न जाने उस समय वहाँ के अंगरेज निवासियों पर क्या गुज़रती हो। पटरियाँ सुधरने के बाद गाड़ी छूटी। दूसरे दिन सुबह होते होते गुजरानवाला का नगर दृष्टिगोचर होने लगा।

वह स्थान भी आया जहाँ से संतसिंह कूद कर भागा था। उस दिन की आज से तुलना करते समय उसे सारी पुरानी बातें स्मरण हो आईं।

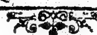
गाड़ी स्टेशन के निकट पहुँचने लगी। उसने देखा स्टेशन का एक भाग जला हुआ पड़ा है। लकड़ियाँ अग्नि में भस्म हो जाने के कारण काली हो गई हैं। दीवालें आधी गिर गई हैं। मुसाफ़िरखाने में बाहर भीतर सभी जगह

सन्नाटा छाया हुआ है। जो दो चार कुली स्टेशन पर खड़े हैं, वे भी भयभीत दिखाई देते हैं।

गाड़ी से उतर कर सब स्टेशन के बाहर आकर खड़े हो गए। दो तीन अंगरेज़ मोटर साइकिल पर उसी समय आए थे। उन्होंने जनरल फाउलर को देख कर कुछ मुसकुराते हुए हाथ मिलाया और कहा,—"हम लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आपके आ जाने से हम लोगों की बहुत कुछ चिंता दूर हो गई।" जो पल्टनें पहले ही से गुजरानवाला में पहुँच गई थीं उन्हीं के यह अफ़सर थे। जेनरल फ़ाउलर ने पूछा,—"अब शहर का क्या हाल है?"

उन्होंने उत्तर दिया,—"दशा अच्छी नहीं है। नगर का चार्ज आपही को मिलेगा। उस समय जैसा कहिएगा किया जायगा।"

जेनरल फ़ाउलर ने सब को स्टेशन के बाहर लाकर पंक्ति में खड़ा किया। और नगर की ओर उनका मुख करके मार्च करने की आज्ञा दे दी। शहर की हालत देख कर संतसिंह के हृदय में भय और दुःख के भाव उठ रहे थे। चारों ओर सन्नाटा था, बाजार बिल्कुल बन्द पड़ी थी। एक मनुष्य भी चलता फिरता नहीं दिखाई देता था। ऐसा मालूम होता था मानो उस देश में मनुष्यों का निवास ही नहीं है। दो एक कुत्ते पूंछ दबाए हुए सड़क के किनारे किनारे चले जा रहे थे। एक दूकान की दीवाल में पीपल का एक छोटा सा वृक्ष लगा हुआ था उसकी एक सूखी हुई शाखा पर एक कौवा बैठा हुआ काँव काँव कर रहा था। एक एक फ़र्लांग के अन्तर पर हाथ में बंदूक लिए हुए फ़ौजी सिपाही खड़े थे। वे जेन-



रल फ़ाउलर और उनके साथ अन्य अफसरों को देख कर बंदूक ऊंची करके सलाम करते थे।

राज-पथ से होती हुई सेना नगर के उत्तरी भाग में आ कर ठहर गई। वहाँ पहले ही से बहुत से डेरे पड़े हुए थे। इस फ़ौज ने भी वहीं पर अपने तम्बू तान दिए।



सत्रहवाँ परिच्छेद



रात्रि हो चली थी। अंधकार बढ़ता जाता था गुजरानवाला नगर के सड़कों पर एक भी दीपक जलता हुआ नहीं दिखाई पड़ता था। हवा बिल्कुल बंद थी। वृक्ष के पत्ते तक नहीं हिलते थे। आकाश के हवाई जहाज़ क्या उड़ रहे थे नगर निवासियों के सिर पर मौत मड़रा रही थी।

रायसाहब लाला किशनचंद की कोठी में उदासी छाई हुई थी। देवबाला एक कमरे में बैठी हुई आँसू बहा रही थी। लाला साहब बार बार बाहर आते थे और भीतर जाते थे। कभी कभी देवबाला उठ कर चिक की आड़ से बाहर देखती और फिर आकर रोने लगती। जब कोई फाटक से भीतर आता हुआ दिखाई देता तो लाला जी तुरंत बाहर दौड़े जाते और लौटे हुए नौकर से यह उत्तर पाकर कि छोटे बाबू का कहीं पता नहीं चला रोआसा मुँह लिए लौट आते थे। हाँ, नौकर से यह अवश्य कहते आते थे कि जाकर फिर ढूँढ़ो। परन्तु नौकर जान पर खेल कर अपने स्वामी के एक-मात्र पुत्र का पता लगाने के लिए किसी प्रकार भी उद्यत नहीं थे। नौकरी चले जाने के भय से वे फाटक से निकल कर कुछ देर इधर उधर टहलने के बाद आकर फिर वही कोरा उत्तर दे देते थे।

किशनलाल अपनी स्त्री के पास हाथ पर सिर रक्खे हुए बैठे थे कि धड़ाके का शब्द सुनाई पड़ा। उनकी स्त्री चौंक

पड़ी। उसने डर कर पूछा,—"बाबू जी यह धड़ाका कैसा हुआ?"

एक नौकर ने हाँफते हुए आकर कहा,—"हुजूर फिरंगी लोग हवाई जहाज से बम्ब गिरा रहे हैं। वे इसी तरह से सारे नगर को भस्म कर देंगे।"

उनकी स्त्री ने काँपते हुए कहा,—"हाय, बालकिशन की न जाने क्या दशा हो? कहाँ रह गया? मैं कहती थी आज घर से न निकल, परन्तु उसने अपनी ही हठ रक्खी, माना नहीं।"

देवबाला रोने लगी। अभी तक लाला किशनचंद किसी तरह से अपने को सँभाले हुए थे परन्तु अब उनसे भी न रहा गया। उनके नेत्रों से आँसू टप टप गिरने लगे। अश्रुओं की झड़ी के कारण सामने रक्खा हुआ प्रकाश उन्हें धुँधला मालूम होने लगा। फाटक पर दो चार मनुष्यों के आने की आहट सुनाई दी। सारे नौकर हताश होकर लौट आए थे। फिर इस समय आने वाला कौन हो सकता?

दुर्दिन में मनुष्य आशा के ही सहारे जीता है। किशन-चंद कमरे से बाहर निकल आए। नौकर उनके चारों ओर आकर खड़े हो गए। देवबाला रोती हुई चिक की आड़ से खड़ी होकर देखने लगी।

चार मनुष्य दो आगे दो पीछे किसी वस्तु को कंधे पर लादे हुए चले आ रहे थे। कोठी के बिल्कुल सामने पहुँच कर उनमें से एक ने पूछा,—"रायसाहब कहाँ हैं?"

लाला किशनचन्द का हृदय धड़ २ कर रहा था। उन्होंने आगे बढ़कर काँपते हुए कहा,—"कहिए।" उन मनुष्यों ने धीरे २ सीढ़ी पर चढ़ कर बरामदे में कंधे पर से वह वस्तु



उतार कर रख दी। और उसपर से कपड़ा हटाते हुए कहा,-"इनको हमलोगों ने नगर के बाहर एक पुलिया के पास इसी अवस्था में पड़ा हुआ पाया था। आस पास की पृथ्वी बम्ब के गोले से फट गई थी। वही मिट्टी उड़ कर इनके ऊपर पड़ गई है। यह आप ही के पुत्र हैं न ?"

उस मनुष्य ने अपनी बात पूरी भी न कर पाई थी कि किशनचंद पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। देवबाला का सिर चक्कर खाने लगा, वह किवाड़ पकड़ कर वहीं बैठ गई।

नौकर चाकर दौड़ कर पानी ले आए और लाला जी के मुँह पर छिड़क कर पंखा झलने लगे। दासियों ने दौड़ कर देवबाला को सँभाला। उनको चेत आने पर एक आगन्तुक ने कहा,—"घबड़ाइए मत, आपका पुत्र जीवित है। उसकी साँस चल रही है।"

नौकर अधिक निकट आकर खड़े हो गए थे। उनसे उसने कहा,—"एक तरफ़ हो जाओ, हवा आने दो।" बालकिशन का कपड़ा रक्त से तर था। उसका दाहिना हाथ कट गया था। उस पर खूब कस कर कपड़ा बँधा हुआ था, सारा शरीर पीला पड़ गया था। वक्षस्थल पर भी कई घाव थे। चेहरा इतना विकृत हो गया था कि पहिचानना कठिन था। होंठ एक ऊपर को उठ गया था। दाँत बाहर निकल आए थे। मुख पर और बालों में मिट्टी भरी हुई थी। रक्त इतना निकला था कि शरीर पर पड़ी हुई मिट्टी तक गारे के समान हो गई थी।

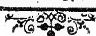
उस समय आठ बज गये थे। इतनी रात गए कोई मनुष्य घर से निकलने का साहस नहीं कर सकता था। सरकारी



विज्ञप्ति थी कि जो कोई रात्रि में आठ बजे के बाद सड़क पर चलता हुआ दिखलाई पड़ेगा वह गोली से मार दिया जायगा। फिर भला क्यों कोई डाक्टर अपनी जान देने के लिए इतनी रात को लाला किशनचन्द के मकान पर आता।

लाला साहब ने दुःख-पूर्ण स्वर में कहा,—"इस समय कोई डाक्टर भी तो नहीं मिलेगा।" जो आगन्तुक अभी तक बातें करता जाता था उसी ने अपने एक साथी की ओर संकेत करके कहा,—"आप चिन्ता न करिए। ये डाक्टरी अच्छी तरह से जानते हैं, सब ठीक कर देंगे। ज़रा पानी और मँगवा लीजिए और भीतर से थोड़ा सा कपड़ा भी मँगवा लीजिए।" जब सब सामान आ गया तो आगन्तुकों में से एक ने बालकिशन का सिर उठाकर अपने जंघे पर रख लिया। और दूसरे ने जिसे उसके साथी ने डाक्टर बतलाया था पानी से घाव साफ़ करना आरम्भ कर दिया। घाव धुलने के बाद उसने जेब से एक डिबिया निकाली और उसमें से मरहम निकाल कर धीरे धीरे घाव पर लगा दिया। जब कटे हुए हाथ पर का कपड़ा खोल कर उसने उस गहरे ज़ख्म का धोना आरम्भ किया तो लाला किशनचन्द से वहाँ खड़ा न हुआ गया। वे वहाँ से हट आए। उसमें से रक्त धीरे धीरे बह रहा था। अच्छी तरह से ज़ख्म साफ़ करने के बाद डाक्टर साहब ने उसपर मरहम लगाकर अपने एक साथी की सहायता से खूब कस कर पट्टी बाँध दी। इसके बाद उन्होंने युवक का सारा शरीर धोया और उसे नए वस्त्र पहिना दिए।

आहिस्ता से कई मनुष्य सहारा देकर बालकिशन को कोठी के भीतर एक कमरे में ले आए। वहाँ मुलायम गद्दे



दार चारपाइयाँ बिछी हुई थीं उनमें से एक पर उन लोगों ने बालकिशन को लिटा दिया।

चेत आने पर देवबाला को दासी ने बतला दिया था कि बालकिशन जीवित हैं। वह अपने पुत्र का मुख देखने के लिए छटपटा रही थी। जब बालकिशन खाट पर लिटा दिए गए तो एक दासी ने आकर कहा,—"मालकिन छोटे बाबू को देखना चाहती हैं।"

आगन्तुकों ने लाला किशनचंद की ओर फिर कर कहा,—"अच्छा अब हम लोगों को आज्ञा दीजिए।"

लाला जी ने कहा,—"आइए हमारे साथ गोल कमरे में चलिए। मैं अभी आप लोगों को नहीं जाने दूँगा।"

लाला किशनचन्द उन आगन्तुकों के साथ गोल कमरे में चले गए। देवबाला कमरे में आकर बालकिशन को देख देख कर रोने लगी। बाहर आगन्तुकों ने रोदन की ध्वनि सुनकर लाला जी से कहा,—"भीतर जाकर कह दीजिए रोवें नहीं। उससे लड़के की तबियत बिगड़ जाने का भय है।"

लाला किशनचन्द ने देवबाला से आकर कहा,—"यह क्या करती हो। उसके पास बैठकर मत रोओ। रोने से उसकी तबियत और ख़राब हो जायगी।"

देवबाला चुप होकर विजन से बयार करने लगी। लाला किशनचन्द कमरे में लौट आए। अभी तक सब खड़े हुए कमरे के बड़े बड़े तैल चित्र देख रहे थे। कुछ विस्मय विमुग्ध होकर अवनिका का सौन्दर्य्य निरीक्षण कर रहे थे। लाला किशनचन्द ने सब से बैठने की प्रार्थना की। फिर अत्यन्त विनम्र स्वर में पूछा,—"क्या आप लोग मुझे अपना परिचय देने की कृपा कर सकते हैं?"



उनमें से एक ने कहा,—"हाँ बड़ी प्रसन्नता से। हम लोग स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी की सेवासंघ के स्वयं-सेवक हैं। दीन दुखियों को सहायता देते घूमते हैं।"

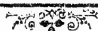
उनकी यह बात सुनकर किशनचन्द सन्नाटे में आ गए। उनके चेहरे का रंग बदल गया। अपने ऊपर ही उन्हें ग्लानि हो रही थी। उन्होंने गिड़गिड़ाते हुए कहा,—" अज्ञानतावश मुझसे अपराध हो गया। मैं नहीं जानता था कि आप लोग संसार का इतना उपकार कर रहे हैं। जब स्वयं अपने ऊपर पड़ी तब मेरी आँखें खुलीं। उस दिन स्वामी जी सेवासंघ के लिए मुझसे चन्दा माँगने आए थे। उन्हें इस नगर में आए हुए कुछ ही महीने हुए हैं। मैंने समझा कि जैसे और बाबा साधू माँगते खाते हैं वैसे यह भी एक होंगे। मैंने एक पैसा भी नहीं दिया। उल्टे उन्हें दो चार उल्टी सीधी सुना दी। वे हँसते हुए उठकर चले गए। आज वह बात मुझे बिच्छू के डंक की चोट के समान यंत्रणा दे रही है।"

इतना कहने के बाद वे अपने स्थान से उठकर एक कमरे में गए। आगुन्तकों ने ताला खुलने की आवाज़ सुनी। लौट कर उन्होंने एक हज़ार रुपए के नोट देते हुए कहा,—"स्वामी जी के चरणों पर इस तुच्छ भेंट को रखकर कहिएगा मेरे अपराध को क्षमा कर दें।"

एक ने नोट लेते हुए कहा,—"आप दुखित न होइए। स्वामीजी किसी की बात को बुरा नहीं मानते हैं।"

सब लोग उठकर खड़े हो गए। चलते चलते एक ने कहा,—"हम इस दान के लिए आपके बड़े कृतज्ञ हैं।"

स्वयं-सेवकों के चले जाने के बाद लाला किशनचन्द भीतर आए। और धीरे से पुत्र के निकट चारपाई की पट्टी

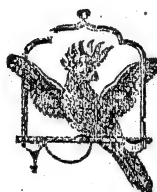


पर बैठ गए। उन्होंने फुसफुसाते हुए देवबाला से पूछा,—"अब इसकी तबियत कैसी है?"

देवबाला ने कहा,—"वैसी ही है। केवल एक बार सिर फेरा था।"

किशनचन्द उठकर कुर्सी पर बैठ गए। वह चुप थे। दासियाँ दबे पैरों कमरे में आती थीं। तेज़ प्रकाशवाला लैम्प हटा दिया गया था। उसके स्थान में कड़ुवे तेल का दीपक मंद मन्द जल रहा था।

आधा घंटा बीत गया। कोई एक दूसरे से बोला नहीं। इसी समय सहसा बाहर नौकरों के किसी से झगड़ने की आवाज़ किशनचन्द के कानों में पड़ी।



अठारहवाँ परिच्छेद।



संतसिंह कंधे पर बंदूक रक्खे हुए निशाचर की भाँति सड़क पर पहरा दे रहा था। इसी सड़क पर सैकड़ों घोड़े गाड़ी, साइकलें और मोटर दौड़ा करती थीं—मनुष्य कंधे से कंधा रगड़ते चलते थे—परन्तु आज वहाँ मसा भी नहीं भन्नाता था। दूर से केवल कुत्तों के रोने की आवाज़ सुनाई देती थी, बीच बीच में उल्लू बोल उठते थे!

संतसिंह टहलते टहलते थक गया। वह सड़क के किनारे मोड़ के पास एक दूकान की सीढ़ियों पर आकर बैठ गया। नौ बज गए थे। ड्यूटी पूरी समाप्त होने में अधिक देर नहीं थी।

उसे निकट ही कहीं से चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी। वह उठ खड़ा हुआ और अपनी बंदूक को उसने एक बार अच्छी तरह से देखा। जब उसे विश्वास हो गया कि बंदूक में गोली भरी हुई है तो वह जल्दी जल्दी उसी ओर को चलने लगा जिधर से यह शब्द आता हुआ जान पड़ा था।

जब वह सड़क के दूसरे मोड़ पर पहुँचा तो उसे मार पीट की आवाज़ और भी साफ सुनाई दी। तनिक आगे बढ़ने पर उसने देखा कि वह लाला किशनचंद की कोठी के सामने खड़ा हुआ है। कोठी के फाटक खुले पड़े हैं। पहरा देने वाला पृथ्वी पर गिरा पड़ा है। उसके सिर से रक्त बह



रहा है और उसके निकट ही एक लालटेन उलटी हुई पड़ी है। उसका तेल ऊपर निकल आने के कारण सारे लालटेन में आग लग गई है।

संतसिंह ने उस नौकर के निकट जाकर देखा, वह अचेत पड़ा हुआ था। उससे कुछ पता न लगेगा यह सोच कर वे शीघ्र ही आगे बढ़े। कोठी के द्वार पर आकर देखा कि द्वार भी खुला पड़ा है। इसी समय भीतर से किसी की चीत्कार सुनाई दी। संतसिंह तुरन्त बन्दूक संभाल कर भीतर घुसा और अनुमान के सहारे जिस कमरे में कुछ प्रकाश की झलक दिखाई देती थी उसी ओर बढ़ा। दरवाजों से धक्का खाते हुए—देहरियों की ठेस लेते हुए वह जैसे तैसे करके कमरे में पहुंच गया।

कमरे में आकर उसने देखा कि एक गोरा हाथ में नंगी संगीन लिए हुए लाला किशनचन्द पर आक्रमण करने के लिए उद्यत है। लाला जी के हाथ पैर फूल गए हैं। दूसरा गोरा अपने बन्दूक की नली उनके स्त्री के सिर पर लक्षित किये हुए है। देवबाला भय से काँप रही है। अधिक सोचने बिचारने का समय कहाँ था? संतसिंह ने अपने बन्दूक को किशनचन्द पर आक्रमण करने वाले गोरे के ठीक सिर पर तान कर घोड़ा दबा दिया। धड़ाके की घोर ध्वनि हुई। गोरा पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसकी लाश तड़पने लगी।

दूसरा गोरा अपने साथी की यह दशा देखकर जान छुड़ाकर भागा। संतसिंह भी यह कहते हुए कि—"ज़िमीदार साहब, आप स्त्री पुत्र को लेकर इसी दम घर छोड़ दीजिए। ये हत्यारे बदला लेने के लिए फिर आवेंगे।" बात की बात में गायब हो गए।



लाला किशनचन्द ने जो कुछ देखा वह उन्हें स्वप्न सा प्रतीत हुआ। गोरों का बलात् अंतःपुर में प्रवेश—ऐन मौके पर संतसिंह की सहायता—एक अद्भुत घटना थी।

जब विस्मय का वेग कुछ कम हुआ तो उन्होंने देवबाला से कहा,—"शीघ्र ही कोठी छोड़ने की तैयारी करो।"

देवबाला ने कहा,—"तो यह सब सामान किसपर छोड़ जाइएगा।"

किशनचन्द ने कहा,—"भाग्य पर। जब हम ही नहीं रह जायँगे तो यह चीज़ें किस काम आवेंगी। इन वस्तुओं का मूल्य प्राणों से अधिक नहीं है।" बालकिशन को नींद आ गई थी। वह पड़ा हुआ सो रहा था। परन्तु बन्दूक की आवाज़ सुनकर उसकी आँखें खुल गईं। वह चौंक कर डर गया। इस समय ज्वर के कारण उसका शरीर तप रहा था। उसने अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा,—"पानी।"

देवबाला गिलास में सुराही से पानी लेकर देने चली। उसके हाथ से लाला किशनचन्द ने गिलास लेते हुए कहा, पानी मैं दिए देता हूँ। तुम जाओ कुछ रुपए और क़ीमती आभूषण साथ में ले चलने के लिए लोहेवाले कैशबाक्स में रख लो। समय पड़ने पर काम आएगा।"

देवबाला ने पूछा,—"बालकिशन को किस प्रकार ले चलोगे।"

लाला किशनचन्द ने कहा,—"चार नौकरों को साथ ले लेंगे। उन्हीं के कंधे पर ले चलेंगे।"

देवबाला ने कहा,—"तब तो उसे बड़ा कष्ट होगा।"

किशनचन्द बोले,—"परन्तु यहाँ तो प्राण जाने का भय है। जल्दी करो। अधिक समय नहीं है।"

लाला किशनचन्द रोगी को पानी पिलाने के बाद बाहर आकर नौकरों को पुकारने लगे। नौकर अपनी अपनी कोठ-रियों में जा छिपे थे। मालिक को पुकारते हुए सुन कर उन्होंने समझा कि मालूम होता है बला किसी प्रकार टल गई। अब तो कोई हाथ में लाठी लिए हुए चला आ रहा है। कोई बांस उठाए हुए। सबने आकर बड़े साहस से पूछा,—" क्या है हुजूर ? "

लाला किशनचन्द ने कहा,—" अभी दस मिनट हुए घर में डाकू घुस आए थे तब तुम लोग क्या कर रहे थे ? "

एक नौकर ने आश्चर्य प्रकाशित करते हुए कहा,—"डाकू घुस आए थे ? मुझे हुजूर पता नहीं था। मैं उस समय खाना खा रहा था। मैंने समझा कोई फाटक पर झगड़ रहा होगा। नहीं तो मैं खाना छोड़ कर उठ आता।"

दूसरे ने कहा,—" हुजूर मैं उस समय पाखाने में था। मुझे क्या मालूम था कि घर में डाँकू घुस आए हैं।"

इसी प्रकार सब ने हीला हवाला बता दिया। एक ने जो सब से पीछे खड़ा था लाठी घुमाते हुए कहा,—"साले किधर गए ? "

लाला किशनचंद ने कहा कि वे तो भाग गए, अब एक मार भी डाला गया है तुममें से चार छः आदमी मेरे साथ आओ। फिर उन्होंने एक वृद्ध ड्योढ़ीवान की ओर घूम कर कहा —"हम लोग तो आज रात में बसन्तपुर गांव को जाते हैं। घर खाली रहेगा, सब तुम्हीं पर छोड़ जाते हैं।"

जो आगे खड़े हुए थे उन्हीं में से छः नौकरों को लेकर लाला किशनचंद भीतर आए। उनमें से दो को गोरों की



सून देह दिखा कर कहा,—"इसको जाकर हाते के बाहर पुलिया के नीचे फेंक आओ।"

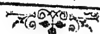
उनको उठाते हुए नौकरों ने कहा,—"बाप रे बाप, साला इतना भारी है। न जाने किस चक्की का पीसा खाता था।"

देवबाला कुछ नकदी और कुछ बहुमूल्य आभूषण एकत्र करके कैश बाक्स में रख चुकी थी। वह बक्स हाथ में लिए हुए कमरे में आई। किशनचंद के सामने संदूक रखते रखते वह हाँफने लगी। किशनचंद ने पूछा,—"तैयार हो गई?"

देवबाला ने कहा,—"हाँ।"

लाला किशनचंद के आज्ञानुसार दो नौकर बेंत की आराम कुर्सी में बाँस बाँध कर ले आए। उसके ऊपर खूब मुलायम गद्दा बिछा कर सिरहाने और अगल बग़ल तकियाएं रख दी गईं। फिर धीरे से बालकिशन को खाट पर से उठा कर उस पर सुला दिया गया। चारो नौकर बालकिशन सहित आरामकुर्सी को कंधे पर रख कर आगे आगे चलने लगे। पीछे हाथ में बक्स लिए हुए लाला किशनचंद अपनी स्त्री के साथ। सड़क से न जाकर वे लोग अँधियारी गलियों में घुस गए। जो लोग अपने घरों में बैठे हुए धीरे धीरे बातें कर रहे थे वे भी उनकी पदध्वनि सुन कर मौन हो जाते थे।

एक गली में से दूसरी गली में घुसते समय देवबाला ने देखा कि चार अंगरेज़ अश्वों पर सवार राजपथ से होकर चले जा रहे थे। उनके घोड़ों की टाप कँकड़ीली सड़क पर बड़े जोर से बज रही थी। देवबाला, लाला किशनचंद के पास खिसक आई और जब तक घोड़े के टाप की आवाज़ सुनाई देती रही वह बराबर किशनचंद से लिपटी हुई चलती रही।



गलियों से निकलने के बाद सब लोग एक खुले मैदान में आ गए। यह नगर का वाह्य भाग था। यहाँ पर लोग गर्मियों में सैर करने के लिए आया करते थे। चारों ओर लम्बे लम्बे वृक्ष लगे हुए थे। पृथ्वी पर की घास सूख गई थी। दो फर्लाङ्ग के अन्तर पर पके हुए खेत खड़े थे। यहाँ से बसंतपुर तीन मील पड़ता था।

बालकिशन को कुछ विकलता मालूम हुई। वह इसी बीच कई बार पानी माँग चुका था। लाला किशनचंद ने नौकरों से एक वृक्ष के नीचे ठहर जाने को कहा। उन्होंने आरामकुर्सी कंधे पर से उतार कर नीचे रख दी और कुछ दूर हट कर बैठ गए। बालकिशन हाथ पैर फेंक रहा था। किशनचंद ने शरीर पर हाथ रख कर देखा। विषम ज्वर चढ़ा था। वे मोमबत्ती और दियासलाई साथ में लेते आए थे। प्रकाश करने पर उन्होंने देखा कि बालकिशन का वस्त्र रक्त से तर है। मार्ग में हिचके लगने के कारण घाव फट गया था। लड़के ने फिर कहा,—"पानी।"

साथ में लोटा अथवा गिलास लाने का किसी को ध्यान ही नहीं रहा था। लाला किशनचंद ने कैश बाक्स खोल कर उसमें से एक खाना निकाला। उसे लिए हुए वे बम्बे पर गए। उसमें पानी नहीं था। हताश होकर लौट आए। एक नौकर ने कहा,—"मैंने सुना था बम्बे की कल पर फ़ौज का अधिकार हो गया है। शहर भर का पानी बंद कर दिया जायगा।"

लाला किशनचंद ने उसको वह लोहे का खाना देते हुए कहा,—"कहीं से ढूँढ़ कर थोड़ा सा पानी ले आओ।"



लालाजी नौकर की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह लौट कर नहीं आया। बालकिशन बार बार पानी माँगता था। उसका गला सूखा जाता था। किशनचंद सिर उठाकर देखते थे परन्तु नौकर का कहीं पता नहीं था। किशन की ज़बान लड़खड़ाने लगी। उसे हिचकियाँ आने लगीं। थोड़ी देर में हिचकियाँ आना बंद हो गईं, आँखें टँग गईं, सारा शरीर लकड़ी हो गया।

देवबाला पागलिनी की भाँति पुत्र के मुख पर मुख रख कर चिल्ला चिल्ला कर रुदन करने लगी। किशनचंद बालकों की तरह रो पड़े।

उसी समय एक ओर से कुछ फ़ौज के सिपाही दौड़ते हुए आते दिखाई दिए। वे चिल्ला रहे थे,—"पकड़ो, पकड़ो, गिरफ़्तार कर लो।"

पीछे से वृक्षों की आड़ से आठ दस मनुष्यों को लिए हुए गेरुवा वस्त्र पहिने एक साधू निकल पड़े।



उन्नीसवाँ परिच्छेद।





"सावधान! अबला पर हाथ न उठाना।"

स्वामीजी की गरजती हुई आवाज़ सुनकर एक क्षण के लिए सिपाही रुक गए। परन्तु वे फिर आगे बढ़े। स्वामीजी के साथी अब बिल्कुल निकट पहुँच गए थे। उनसे सिपाहियों से मुठभेड़ हो गई। इसी गड़बड़ी में अवसर पाकर स्वामीजी ने देवबाला के निकट जाकर कहा,—'बहिन, तुम मेरे साथ चली आओ।"

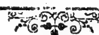
देवबाला बोली,—"स्वामीजी, मेरे पति को तो सिपाहियों ने घेर लिया है। मैं उन्हें छोड़कर कैसे जा सकती हूँ!"

स्वामीजी ने कहा,—"अधिक वादविवाद करने का समय नहीं है। तुम्हारे स्वामी को मेरे साथी बाद को अपने साथ ले आवेंगे। इस समय तुम मेरे पीछे पीछे चली आओ।"

देवबाला कुछ हिचकिचाई।

स्वामीजी ने कहा,—"तुम्हारे देर करने से तुम्हारे प्राण भी संकट में पड़ जायंगे। तुम्हारे पति के बचने का भी कोई उपाय न रहेगा। जल्दी करो।"

यह कह कर स्वामीजी सघन वृक्षों के समूह की ओर बढ़े उनके पीछे कैशबाक्स उठाकर देवबाला चलने लगी। यह देखकर स्वामीजीने वह सन्दूक अपने हाथ में ले लिया। जब वे कुछ दूर निकल आए तो पीछे से आवाज़ आई,—"वह, देखो वह साधू स्त्री को भगाए लिए जा रहा है।"



उसी समय किसी ने डपट कर कहा,—"उधर पग न बढ़ाना ।"

स्वामी जी देवबाला सहित सघन बन में घुस गए थे। झाड़ में कपड़ा फंस जाने के कारण देववाला कभी कभी रुक जाती थी और कपड़े को सुलझाने लगती थी। कुछ दूर चलने के बाद स्वामी जी को कुछ खटका मालूम हुआ। पीछे वृक्षों के हिलने डुलने से किसी के पीछा करने का संशय प्रतीत होता था। स्वामीजी ने देवबाला से कहा,—"बहिन, इधर आओ ।"

वे झाड़ झंखार में घुसने लगे। जब मनुष्य के प्राणों पर आ बनती है तो उसका बहुत सा भय दूर हो जाता है। साँप, बिच्छुओं की कुछ भी परवाह न करके दोनों व्यक्ति बन के अत्यंत भयंकर भाग की ओर बढ़ रहे थे। एक वृक्ष के पीछे आकर स्वामीजी खड़े हो गए। वहाँ पर एक गड्ढा था। उसी की ओर संकेत करके स्वामीजी ने कहा—"थोड़ी देर के लिए इसी में बैठ जाओ।"

जब देवबाला उसमें बैठ गई तो उन्होंने वहीं बकस रख कर उस स्थान को पत्तों और शाखाओं से ढक दिया। और स्वयं समीपवर्त्ती वृक्ष पर चढ़कर बैठ गए ।

कुछ समय के बाद दो मनुष्य उस स्थान पर आये। एक ने दियासलाई जला कर देखा और कहा,—"वह साधू इधर ही से तो भागा था।"

देवबाला ने देखा दोनों मनुष्य सिर से पैर तक सिपाही की पोशाक पहिने हुए हैं। भय से सिमट कर तनिक सी रह गयी थी। उनमें से एक ने फिर दियासलाई जलाई और अच्छी तरह से देख कर कहा,—"मालूम देता है, वह



आगे बढ़ गया। परन्तु होगा कहीं यहीं। उसके साथ में स्त्री है। इतनी जल्दी कहाँ जा सकता है।"

यह कह कर वह दोनो व्यक्ति आगे बढ़ गए। स्वामी जी वृक्ष पर से नीचे उतर आए और देवबाला को उस स्थान से निकाल कर बक्स को बगल में धर कर पीछे की ओर घूम पड़े। यहाँ पर आकर उन्होंने एक पगडंडी पकड़ी, परन्तु वे बराबर पगडंडी पर ही नहीं चलते रहते थे। कभी कभी वृक्षों के बीच से होकर चलने लगते थे।

जंगल पार करते करते बहुत देर लग गई। देवबाला थक गई। जिस समय स्वामी जी देवबाला को साथ में लिए हुए एक छोटे से मकान के सामने आकर खड़े होगए उस समय वह पसीने से बिल्कुल नहा उठी थी।

स्वामी जी के आवाज़ देते ही एक युवक ने आकर द्वार खोल दिया। भीतर जाकर स्वामी जी ने देखा कि कमरे में कई मनुष्य बैठे हुए हैं। वे स्वामी जी को देख उठ कर खड़े हो गए। उनके साथ में एक स्त्री को देख कर सब मार्ग देने लगे। उन्होंने एक युवक की ओर देखकर कहा,—"बगल वाली कोठरी की खिड़कियाँ खोल दो और उसमें एक दीपक जला कर रख दो।"

जब वह कोठरी खुल गई और उसमें दीपक रख गया तो उन्होंने देवबाला से कहा,—"बहिन, तुम इसी कोठरी में बैठो। तुम्हें प्यास तो नहीं लगी है? पानी मँगवा दूँ?"

देवबाला ने सिर हिला कर अनिच्छा प्रकट की। देवबाला के कोठरी में चले जाने के बाद स्वामी जी ने वहीं जाकर बक्स रख दिया और फिर एकत्र मनुष्यों के बीच में आकर बैठ गए।

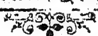
कमरे के एक कोने में तख़्त बिछा हुआ था। उसके ऊपर एक सुंदर मृगछाला पड़ा हुआ था। सिरहाने आलमारी में कुछ पुस्तकें सजी हुई रक्खी थीं। नीचे तीन चार चटाइयाँ बिछी हुई थीं। बीच में लकड़ी का एक दीयट रक्खा हुआ था, उसपर मिट्टी का दिया जल रहा था।

स्वामी जी ने उन मनुष्यों की ओर देख कर कहा,—"मैं पास ही के एक गावँ से लौटा आता था कि मार्ग में मुझे किसी अबला का करुण रुदन सुनाई दिया। मैंने अपने साथियों को लिए हुए निकट जाकर देखा कि इन महिला और इनके पति पर कुछ सिपाही आक्रमण कर रहे हैं। मैं इनको तो बचा कर अपने साथ लेता आया हूँ। इनके पति भी पीछे पीछे आते होंगे। मैं अपने अन्य साथियों को उनको लाने के लिए छोड़ आया हूँ।"

फिर उन्होंने मुसकुराते हुए कहा,—"अब आप लोग अपनी अपनी कथाएँ सुनाइए।"

उनमें से एक बोला,—"स्वामी जी, मैं जिस समय यहाँ से गया मैंने सुना कि रामनगर गाँव के सब लोग बुला कर दिन भर धूप में खड़े किए गए थे। उनमें से कई गर्मी के कारण बेहोश होकर उसी जगह गिर पड़े। उन्हें उनके घर वाले साथ उठा ले गए। मैं यथाशक्ति उनके रोग का उपचार कर आया हूँ।"

दूसरे ने कहा,—"मैं फूलपुर ग्राम से होकर जा रहा था। एक दुर्बल मनुष्य ने मेरे पास आकर कहा, बाबू जी मेरे लड़के को चलकर देख लीजिए। वह बुख़ार में बुत पड़ा है।' मैंने जाकर देखा कि बेत की मार से उसके पीठ की खाल उधड़ गई थी। खूब हृष्ट पुष्ट होने पर भी वह मार की



यंत्रणा को नहीं सह सका था। मेरे पूछने पर कि वह किस अपराध के लिए मारा गया था मुझे मालूम हुआ कि अधिक मोटा होने के कारण उसकी यह दशा हुई थी। मेरे जेब में उस समय भी औषधियाँ पड़ी हुई थीं। मैं उसे उपयुक्त औषधियाँ दे आया।"

इसी प्रकार सब ने अपने आँखों देखी हुई बातें कह सुनाईं। एक युवक दाहिने हाथ में पट्टी बाँधे हुए एक किनारे चुप चाप बैठा था। उसकी ओर देखकर स्वामी ने पूछा,—"मनोहर, तुम्हारे हाथ में क्या हो गया है?"

वह युवक तनिक आगे को खिसक आया और कहने लगा,—"आपने मुझे पँडरी का हाल लेने के लिए भेजा था। आपके आज्ञानुसार मैं आज चार बजे पँडरी के लिए चल पड़ा। गाँव के निकट पहुँचते पहुँचते अन्धेरा हो गया। मैं एक ऊजड़ स्थान से चला जा रहा था। रास्ते में ऊँचे ऊँचे घासों से घिरी हुई एक बावली पड़ती है। जब मैं उसके निकट पहुँचा तो मुझे दो मनुष्य किसी वस्तु को लटकाए हुए कुएँ की ओर जाते दिखाई पड़े। मैं चुपके चुपके उनकी ओर बढ़ा। वे मेरे पैरों की आहट पाकर खड़े हो गए और इधर उधर देखने लगे। मैं भी एक झाड़ के पीछे दबक कर बैठ गया। जब वे निश्चिन्त होकर फिर चलने लगे तो मैं उनके पीछे से पहुँच कर चिल्ला उठा। मेरे इस प्रकार यकायक पीछे से चिल्लाने से वे उस वस्तु को पटक कर भागे। परन्तु उनमें से एक ने चलते चलते लाठी जमा ही दी। मेरे हाथ में बहुत चोट आई परन्तु मैं गिरा नहीं। मैंने नज़दीक से जाकर उस वस्तु को देखा तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। वह एक मनुष्य की लाश थी।"



मनोहर खाँसने लगा। सबलोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे। वह फिर कहने लगा,—"मैंने खूब गौर से देखा। वह मरा नहीं था। साँस धीरे धीरे चल रही थी। मैं गाँव से जाकर एक ग्वाले को बुला लाया। पहले वह आने को किसी प्रकार राज़ी ही नहीं होता था परन्तु जब मैंने कहा कि मैं स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी के सेवा-संघ का स्वयंसेवक हूँ तब वह तुरन्त चलने के लिए उद्यत हो गया। उसीकी सहायता से मैं उस मरणासन्न मनुष्य को उठवा लाया और उसी के मकान में उसे रख भी आया। बहुत देर तक उपचार करने के बाद उसे कुछ चैन हुआ। मैं बड़ी कठिनता से केवल उसका नाम ही जान पाया। शेष हाल जब उसका चित्त स्वस्थ हो जायगा तब मालूम हो सकेगा। स्वामी जी ने पूछा "उसका नाम क्या है?" मनोहर ने कहा,—"हैदर।"

स्वामी जी ने चौंक कर कहा,—"हैदर?" और लोग भी जो वहाँ बैठे हुए थे चौंक पड़े।

मनोहर ने पूछा,—"क्यों, क्या आप हैदर को जानते हैं?"

स्वामी जी ने कहा,—"हाँ, यों ही थोड़ा बहुत।"

मनोहर ने कहा,—"जबसे मैं आपके साथ इस नगर में आया हूँ तभी से उसका नाम सुनता चला आता था। उसकी दुष्टता के किस्से लोग खूब कहा करते थे। आज मुझे उसके दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हो गया।"

स्वामी जी ने कहा,—"तो कल सुबह मैं उसे देखने चलूँगा।"

मनोहर ने कहा,—"बहुत अच्छा। मैं कल तड़के ही यहाँ आ जाऊँगा।"



मनोहर के उठते ही और लोग भी उठ पड़े। स्वामी जी ने उन लोगों को सम्बोधित करके कहा,—"आप लोग भी कल प्रातःकाल ही आजाइएगा। सब लोग साथ साथ चलेंगे। फिर अपने अपने काम पर चले जायँगे।"

एक एक करके सब प्रणाम करने के बाद चले गए। स्वामी जी किवाड़ बंद करके उस कोठरी में आए जहाँ देवबाला बैठी हुई थी। उन्होंने अत्यन्त मृदु स्वर में पूछा,—"बहिन किसी चीज़ की आवश्यकता तो नहीं है?"

देवबाला ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह धीरे धीरे रो रही थी। स्वामी जी ने सांत्वना देते हुए कहा,—"रोती क्यों हो? घबड़ाओ मत। तुम्हारे पति अभी आते होंगे।" यह कह कर वे अपने कमरे में चले आए और दिया को सिरहाने रख कर तख़्त पर लेट गए। और आलमारी से एक पुस्तक निकाल कर उन्होंने पढ़ना आरम्भ किया। बहुत देर हो गई पहले पृष्ठ के आगे नहीं बढ़ पाए। इतने में द्वार पर किसी के कुंडी खटखटाने की आवाज़ सुनाई दी। स्वामीजी ने उठ कर केवाड़ खोल दिए।

एक घबड़ाया हुआ मनुष्य भीतर आया। उसने भर्राए हुए स्वर में कहा,—"स्वामी जी, हमारे साथी सब गिरफ़्तार हो गए। जिन बाबू जी को बचाने का हम लोग प्रयत्न कर रहे थे, वे भी पकड़ गए। मैं किसी प्रकार भाग कर छिपता छिपता यहाँ पहुँच सका हूँ।"

देवबाला ने सब बातें सुन लीं। दुख से उसका हृदय फट गया। वह जल के बाहर पड़ी हुई मछली की भाँति तड़पने लगी। स्वामी जी ने उस मनुष्य से कहा,—"तुम अभी घर जाओ। कल सूर्य्य निकलते ही आ जाना।"

वह मनुष्य चला गया। स्वामी जी किवाड़ की ज़ंजीर लगाने के पश्चात् देवबाला के निकट आकर उसे समझाने लगे,—"तुम्हारे पति छूट आवेंगे। उन्होंने कोई अपराध तो किया नहीं है। भला व्यर्थ में कोई किसी को पकड़ कर कैद रख सकता है?"

सैकड़ों भाँति से स्वामी जी देवबाला को समझाते थे, परन्तु उसकी विकलता किसी प्रकार भी कम नहीं होती थी। स्वामी जी कुछ समय के लिए तख़त पर जाकर लेट रहते और फिर आकर समझाने लगते।

रात्रि में चार बजे रोते रोते देवबाला थक कर चुप हो गई। स्वामी जी रात भर जगते ही रह गए।

बीसवाँ परिच्छेद ।



पौ फटते फटते स्वयंसेवक आकर इकट्ठा हो गए। स्वामी जी ने कमरे के किवाड़ खोल दिये, लोग चटाइयों पर बैठ गए।

रात में स्वामी जी सोये नहीं थे। उनकी आँखे अलसायी हुई थीं। उन्हें सुस्ती घेरे हुए थी फिर भी वह वस्त्र बदल कर तुरन्त उन लोगों के साथ चलने के लिए तयार हो गए।

परन्तु अभी तक वह मनुष्य नहीं आया था जिसने कल रात्रि में लाला किशनचंद के गिरफ्तार हो जाने की ख़बर आकर सुनाई थी। स्वामी जी उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे किताबें आदि ठीक करके आलमारी में रखने लगे। फिर तख़त के ऊपर जो कपड़े पड़े हुए थे उन्हें उठा कर अरगनी पर टाँग दिया। इधर उधर की चीज़ें संभालने के बाद वे सोचने लगे अब क्या करना चाहिए। वह मनुष्य अभी तक नहीं आया था। उसके आने तक ठहरना ही पड़ेगा क्योंकि उसी के साथ स्वामीजी देवबाला को बाहर भेजना चाहते थे।

थोड़ी ही देर के बाद वह मनुष्य आ पहुँचा। दिन बहुत चढ़ आया था। स्वामी जी ने कहा,—"बड़ी देर लगायी।"

उसने उत्तर दिया,—"कल रात्रि में देर करके सोया था। सुबह आखें जल्दी नहीं खुलीं।"

स्वामी जी ने कहा,—"तुम्हें एक काम करना होगा।"

उसने तुरन्त मुस्तैदी से कहा,—"कहिए।"

स्वामी जी—"तुम्हें उस दिन की बात याद है जब हम दोनों आदमी एक तालाबके निकट से होकर चले जा रहे थे। उस समय कंकड़ियों पर पैर पड़ जाने से ज़मीन ढालू होने के कारण तुम फिसल कर गिर पड़े थे। तुम्हारे मुँह में चोट लग गई थी। मैं तुम्हें सहारा देकर एक छोटे से मकान पर ले गया था। वहाँ एक आठ दस वर्ष का बालक खेल रहा था। वह मुझे देखते ही 'स्वामीजी आए, स्वामीजी आए' कहते हुए अपनी माँ के पास दौड़ गया। उसकी माँ घर से निकल आई और बड़े आदर सत्कार से हम लोगों को बिठाया। तुमने जल लेकर अपने मुँह का रक्त धोया, और फिर उस स्त्री की अनुरोध-रक्षा करने के लिए हम लोगों ने थोड़ा सा गुड़ खाकर पानी पी लिया।"

उसने कहा,—"मुझे वह दिन खूब अच्छी तरह से याद है।"

स्वामी जी ने पूछा,—"और तुम्हें वह घर भी याद है।"

उसने उत्तर दिया,—"भली भाँति।"

स्वामीजी बोले,—"तुम तो वहाँ एक ही बार गये थे और वह भी संयोग वश। परन्तु मैं वहाँ बहुधा जाया करता था। वह स्त्री मुझे बहुत मानती है।"

इतनी भूमिका बाँधने के पश्चात् स्वामीजी ने कहा,—"उसी स्त्री के घर पर तुम्हें इन महिला को पहुँचा आना होगा, जिन्हें मैं कल रात में अपने साथ लाया था।"

उसने कहा,—"मैं सहर्ष पहुँचा आऊँगा।"

स्वामीजी ने कहा,—"परन्तु बड़ी सावधानी से जाना।

ऐसे रास्तों से होते हुए इन्हें ले जाना जिधर मनुष्य बहुत कम आते जाते हों।"

उसने कहा,—"स्वामीजी, आजकल लोग मारे भय के घर ही से नहीं निकलते। मार्ग बिल्कुल सूनसान पड़े रहते हैं।"

स्वामीजी ने कहा,—"परन्तु उधर से सिपाही तो आते जाते हैं।"

उसने कहा,—"हाँ, मैं उधर से नहीं जाऊँगा। ऐसे रास्तों से जाऊँगा कि सिपाहियों के फ़रिश्तों को भी ख़बर न लगे।"

स्वामीजी ने देवबाला के कमरे में जाकर देखा वह भूमि पर पड़ी हुई थी। उसे अपने तन बदन की बिल्कुल सुध नहीं थी। केश बिखरे हुए थे। आँखों के आँसू अभी तक सूखे नहीं थे। स्वामीजी के पैरों की आहट पाकर वह सँभल कर बैठ गई। स्वामीजी ने कहा,—"बहिन, उठो। मैं तुम्हें अपने एक विश्वासपात्र अनुयायी के साथ पास के एक गाँव में भेज देता हूँ। वहाँ तुम अधिक सुरक्षित रहोगी। इस मकान में तुम्हारा अधिक समय तक ठहरना ठीक नहीं है।"

देवबाला चुपचाप उसी स्थान पर बैठी रही। पुत्र-वियोग का दुःख तो था ही। पति की विछोह से वह और भी दुखिनी हो रही थी।

स्वामीजी ने कहा,—"चिन्ता क्यों करती हो? मैं तुम्हें जहाँ भेज रहा हूँ उस घर में तुम्हें बहुत कुछ शान्ति मिलेगी। एक स्त्री अपने आठ नौ वर्ष के पुत्र के साथ उसी घर में रहती है। बड़ी नेक है। तुम्हें आराम से रक्खेगी। मैं भी कभी कभी आकर हाल चाल पूछ जाया करूँगा। तुम अपने पति के लिए चिन्ता न करो। वे अवश्य छूट आवेंगे।"



स्वामीजी के बहुत समझाने बुझाने पर देवबाला जाने के लिए राज़ी हो गई । उसने आँसू बहाते हुए स्वामीजी को प्रणाम किया। स्वामीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा,—"देखो बहिन, तुम अधिक दुःख मत करना।"

कैशबाक्स स्वामीजी ने उस मनुष्य को दे दिया। वह बक्स लेकर चलने लगा। धीरे धीरे पग बढ़ाते हुए देवबाला भी उसके पीछे २ चलने लगी। जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गए, स्वामीजी खड़े खड़े उसी ओर ताकते रहे। लोग कमरे से बाहर निकल आए थे। स्वामीजी भीतर जाकर ताख पर से ताला कुञ्जी उठा लाए। इतने में उन्हें सुध आई कि साथ में रुपए तो कुछ लिए नहीं चलते हैं न जाने किस समय क्या आवश्यकता पड़ जाय। यह सोच कर वे फिर अन्दर गए और ट्रंक में से कुछ रुपए पैसे निकालने के बाद जेब में रखकर बाहर आए।

लोगों ने कहा,—'स्वामीजी आज बड़ी देर हो गई।"

स्वामीजी ने द्वार में ताला लगाते हुए कहा,—"क्या कहें, देर में और देर होती है। एक तो वह मनुष्य देर करके आया। मैं चलने की तैयारी करने लगा तो सुध आई कि रुपया भूला जाता हूँ। ट्रंक में से रुपया निकालने गया तो उसे ढूंढ़ने में ही पाँच मिनट लग गए। अब ताला नहीं बन्द होता है।"

स्वामीजी बार बार ताले को दबाकर कुंजी घुमाते थे परन्तु कुंजी खटके के पास आकर अटक जाती थी।

"लाइए मैं बन्द करूँ" कहते हुए एक और सज्जन आगे बढ़े। स्वामीजी अलग हट गए। जब वे भी अपनी बुद्धि लड़ा कर ज़ोर लगा कर हार गए तो दूसरे साहब आगे

आकर कहने लगे,—'हटो मैं अभी बन्द किए देता हूँ।'' उनका भी दर्प चूर्ण करके ताले ने कुंजी की कमर तोड़ दी। आधी कुंजी ताले के भीतर रह गई और आधी उनके हाथ में।

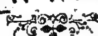
स्वामीजी ने हँसते हुए पूछा,—"कहो ताला बन्द हो गया ?" वे बिचारे खिसिया से गए थे। स्वामीजी भीतर जाकर दूसरा ताला ले आए और द्वार में उसे लगाकर सब के साथ चल पड़े।

पँडरी जाने के लिए सीधा रास्ता नगर के भीतर से ही होकर पड़ता था। बीच नगर से होकर जो सड़क निकलती है उसी के उत्तर वाले सिर पर एक मसजिद है। उसके दाहिने हाथ पर जो रास्ता पड़ता है वही पँडरी को जाता है। वे लोग उसी ओर चलने लगे।

जब उन लोगों ने नगर के अन्दर प्रवेश किया तो उन्हें दूर आकाश में लालिमा दिखाई दी और शोर गुल सुनाई पड़ा। स्वामीजी ने कहा,—"मालूम होता है कहीं आग लग गई है।"

जल्दी जल्दी पग उठाते हुए स्वामीजी आगे बढ़ने लगे। पीछे पीछे उनके साथी चले जा रहे थे। शोर बढ़ता जाता था और अग्नि की लपटें आकाश में बहुत ऊँचे उठ रही थीं। जलती हुई लकड़ियों के चिटकने की आवाज़ स्पष्ट सुनाई देती थी। खटाक खटाक, लाठियाँ चलने की भी ध्वनि कानों में पड़ रही थी। घटना-स्थल के निकट पहुँचते पहुँचते वे दौड़ने लगे।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि डाकखाने के चारों ओर अग्नि की लपटें उठ रही हैं। पुलिसवालों के बहुत निकट आ जाने के कारण उनकी बन्दूकें बेकार हो गई हैं, वे कुन्दों से



लड़ रहे हैं। लोग पागल होकर लाठियाँ चला रहे हैं जिसकी चोट खा खाकर पुलिसवाले पृथ्वी पर गिरते जाते हैं। बहुत से पानी के पीपे उलटे पड़े हैं। चारो ओर 'मारो, मारो' आह! और कराहने की ध्वनि सुनाई दे रही है। स्वामीजी को देखकर लोग और उत्साहित हो गए। स्वामीजी ने अपने साथियों से कहा,—"तुममें से कुछ इन लोगों को शान्त करो। बाकी मेरे साथ चलो।"

स्वामीजी के आज्ञानुसार कुछ लोग भीड़ को समझाने में लग गए, परन्तु वहाँ सुनता कौन था? फिर भी वे हाथ उठा उठाकर लोगों को समझा रहे थे। स्वामीजी अपने अन्य साथियों को लिए हुए पानी के पीपे उठा उठाकर आग बुझा रहे थे।

इसी समय घोड़ों के टापों की आवाज़ सुनाई दी। लोग प्राण लेकर भागने लगे। कुछ ही समय में सिख अश्वरोहियों की पल्टन आकर सामने खड़ी हो गई। कैप्टन का चेहरा जलते हुए अङ्गारे की भाँति लाल हो रहा था। उसने कड़क कर कहा,—"तुम लोग सब खड़े रहो। यदि कोई भी अपने स्थान से हटा तो मैं सबको गोली से उड़वा दूँगा।"

किसी को भागने का साहस न हुआ, गिरफ्तारियाँ आरम्भ हो गईं। पुलिस ने आकर सब को हथकड़ियाँ पहिना दी।

अधजले कागज़ पत्र, कार्ड लिफ़ाफ़ेवाला लोहे का बक्स जितनी भी चीज़ें किसी स्वरूप में बच रही थीं सब एकत्र की गईं।

लोगों के पास से जो माल बरामद हुआ उसे भी पुलिस ने जमा करवा लिया।

फ़ौजों के बीच में घिरा हुआ वह बन्दिओं का समूह छावनी की ओर चलने लगा। उसके बीच में गंभीर मन से स्वामीजी चले जा रहे थे।



इक्कीसवाँ परिच्छेद ।



संतसिंह गोरे को यमलोक पहुँचाने के बाद लाला किशनचन्द की कोठी से भाग निकला था।

फाटक से बाहर निकलने के बाद उसे ध्यान हुआ कि इस समय वह खूनी था। अपने कृत्य की भयंकरता को सोचकर वह थोड़े समय के लिए सहम गया। वह सोचने लगा—"अब किधर जाऊँ, जहाँ मेरी ड्यूटी थी उस स्थल पर जाने पर तो अवश्य जवाब तलब होगा। नया सिपाही पहरा बदलने के लिए भी आ चुका होगा। कर्नल साहब के गश्त का भी समय हो चुका है। उन्हें भी मेरी अनुपस्थिति की ख़बर लग गई होगी। तो क्या हुआ? कोई बहाना बना दूँगा।"

मन ही मन में वह बहाने के आविष्कार करने की कोशिश करता हुआ चला जा रहा था, परन्तु कोई अच्छा मिस उसे लाख खोजने से भी नहीं मिलता था। उसने अपने मस्तिष्क का कोना ढूँढ़ डाला, परन्तु उससे कोई बढ़िया बहाना न बना।

वह अपने चौकी के बिल्कुल निकट आ गया था। वहीं खड़ा हो गया और सोचने लगा कि,—"जब पूछा जायगा कि अब तक कहाँ रहे तो क्या कहूँगा? कोई बहाना भी तो समझ में नहीं आता है। अच्छा तो सारी बातें सच सच कह दूँगा। परन्तु तब तो अवश्य दण्ड मिलेगा। तो क्या भाग

जाऊँ? भाग कर बचना भी तो कठिन है। अवश्य पकड़ा जाऊँगा।"फिर उसने एक बार अपना सारा बल एकत्र करके सोचा,—"मैंने एक निरपराध मनुष्य की रक्षा की, इसमें कौन सा पाप किया। मुझसे यदि पूछा जायगा तो मैं सारी बातें साफ़ साफ़ कह दूँगा। उसमें छिपाने की कौन सी बात है।"

अपने मन को इसी तरह समझाते हुए वह जहाँ पर पहरा दे रहा था वहीं लौट आया। हाथ में बन्दूक लिए हुए उस स्थान पर एक दूसरा मनुष्य खड़ा हुआ था। उसने सजग होकर बन्दूक सीधी कर ली और पूछा,—"कौन?"

संतसिंह ने कहा,—"संतसिंह।"

उसने कहा,—"तुम कहाँ चले गए थे?"

संतसिंह ने कहा,—"यहीं निकट ही कुछ झगड़ा हो रहा था उधर ही चला गया था।"

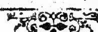
उसने कहा,—"अभी कर्नल साहब तीन अन्य अफ़सरों के साथ आए थे, वे कह गए हैं कि संतसिंह के आते ही उसे मेरे पास भेज देना।"

उस सिपाही की बात पूरी भी न हो पाई थी कि घोड़े पर चढ़े हुए दो सैनिक उधर ही आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने निकट आकर पूछा,—"कौन? संतसिंह?"

संतसिंह ने उत्तर दिया,—"हाँ।"

उनमें से एक ने कहा,—"चलो तुम्हें कर्नल साहब ने बुलाया है।"

उन्हीं सैनिकों के साथ संतसिंह जाने लगे। वह रास्ते भर यही सोचता जाता था कि देखें कर्नल साहब किस प्रकार का व्यवहार करते हैं। क्या पूछते हैं? कर्नल साहब का बँगला सामने दिखाई पड़ने लगा। वह अपनी कल्पना द्वारा सोचने



लगा कि कर्नल साहब रोष भरे शब्दों में पूछेंगे,—" संतसिंह तुम कहाँ गए थे ?" उस समय मैं विनीत भाव से उनकी बात का उत्तर दूँगा तो उनका क्रोध कुछ शान्त हो जायगा। परन्तु पूरी बात सुनकर उनकी क्या अवस्था होगी यह बात वह सोच भी नहीं पाया था कि वह बँगले के द्वार पर पहुँच गया। आज्ञा पाकर दोनों सैनिकों के साथ संतसिंह ने कर्नल साहब के कमरे में प्रवेश किया।

कर्नल साहब के बग़ल में बैठे हुए मनुष्य को देखकर उसका कलेजा धक से हो गया। उसने संतसिंह को देखते ही चिल्लाकर कहा,—"हाँ यही था, मैं इसे खूब पहचानता हूँ यही मनुष्य था।"

यह मनुष्य कोई और नहीं था ? वही गोरा था जो अपने साथी के मारे जाने पर भाग आया था।

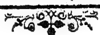
कर्नल साहब ने ग़ुस्से से पूछा,—"संतसिंह, तुमने जोन की हत्या की है।"

संतसिंह ने अपने को संभाल कर कहा,—"नहीं, मैंने एक गोरे को मारा है जो नगर के एक प्रतिष्ठित सज्जन के घर··· "

कर्नल साहब ने क्रोध से काँपते हुए कहा,—" चुप रहो मैं अधिक कुछ नहीं सुनना चाहता। जब जेनरल फ़ाउलर के सम्मुख तुम्हारा कोर्टमार्शल होगा। उस समय जो कुछ कहना होगा कहना।"

कर्नल साहब ने सैनिकों की ओर देखकर कहा,—"इसके हाथ से बन्दूक ले लो और इसे हवालात में बन्द कर दो।"

सैनिकों ने बन्दूक छीन लेने के बाद संतसिंह को एक अंधकारपूर्ण कोठरी में ले जाकर बन्द कर दिया। संतसिंह उस कोठरी में पड़े हुए सोच रहा था कि फ़ाउलर साहब के हाथ



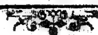
में ही यदि अन्तिम निर्णय हो तो बहुत कुछ दया की आशा है। परन्तु उसका मन किसी प्रकार सुस्थिर नहीं होता था। रात बैठे ही बैठे कट गई। सम्भव है बीच में एक दो बार आँख लग गई हो। परन्तु संतसिंह को यह नहीं मालूम था कि वह सोता था अथवा जागता।

दूसरे दिन आठ बजे दिन में वह हवालात से निकाल कर कोर्टमार्शल सदस्यों के सम्मुख उपस्थित किया गया। राज-विद्रोह और हत्या का उसके ऊपर अपराध लगाया गया था।

उस गोरे ने आकर कहा,—"मैं और जोन सीधी सड़क से होते हुए चले आ रहे थे। उसी समय साफ़ सुथरे कपड़े पहिने हुए एक मनुष्य उधर से दो चार आदमियों को लिए हुए निकल पड़ा। हम लोगों ने उसे रोका। वह अपने नौकरों को लिए हुए हम लोगों पर आक्रमण कर बैठा। उसी समय दूसरी ओर से यह सिपाही 'ज़िमींदार साहब मैं आ गया' कहता हुआ झपट पड़ा। इसने आते ही जोन को गोली से मार दिया। मैं अकेला रह गया था। भाग कर मैं कर्नल साहब के पास आया और उनसे सारा हाल कह सुनाया।"

जेनरल फ़ाउलर ने संतसिंह की ओर देखकर कहा,—"संतसिंह तुम्हें कुछ कहना है।" संतसिंह ने देखा कि जेनरल फ़ाउलर साक्षात् कठोरता की मूर्ति बने बैठे हैं। जिस सरोवर से उसे जल मिलने की आशा थी वह सूख गया था। उसने टूटे फूटे शब्दों में आदि से अन्त तक सारी घटना सच सच बतला दी।

फ़ाउलर साहब ने निश्चय पूर्वक कहा,—"तुम सरासर झूठ बोलते हो। जोन की लाश कोठी के भीतर नहीं वरन



पुलिया के नीचे पाई गई है। ज़िमीदार साहब के दो नौकर भी वहीं पकड़े गए हैं।"

संतसिंह अधिक अब क्या कह सकता था। वह बार बार यही कहता था कि—"मैं सच कहता हूँ। मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ।"

परन्तु, प्रमाण उसके विपक्ष में मिले थे। जेनरल फ़ाउलर ने अपना निर्णय सुनाया,—"संतसिंह के ऊपर राजविद्रोह और हत्या करने का अपराध सिद्ध हो गया। वह आज शाम को पाँच बजे सारी फ़ौज के सामने गोली से मार दिया जाय।"

फ्रांस के रणक्षेत्र पर रक्त बहाने का—अपनी जान पर खेल कर फाउलर साहब के प्राणों की रक्षा करने का—संतसिंह को यह पुरस्कार मिला!

सूर्य धीरे धीरे अस्ताचल की ओर चलने लगे। काल-कोठरी में बैठे हुए संतसिंह अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। हाय! वह, अन्तिम समय अपने पुत्र और पत्नी का मुख भी न देख पाया! अपने परम मित्र हीरासिंह से भी न मिल पाया! उसकी मृत्यु का समय निकट आने लगा। सामने मैदान में पलटनें एक ओर खड़ी कर दी गईं।

पाँच बजे के कुछ मिनट पूर्व एक अधमरी मूर्ति सब के सामने लाकर खड़ी की गई। इस मनुष्य को उसके पलटन के सभी सिपाही पहचानते थे। उसे देखकर उन लोगों के आँखों में आँसू भर आए। जल्लाद की बंदूक उठी। संतसिंह हाथ जोड़े हुए आकाश की ओर देख रहा था। बहुतों से यह दृश्य देखा नहीं गया। उन्होंने आँखें फेर लीं। धड़ाके का शब्द हुआ और संतसिंह का शरीर भूमिपर गिर कर लोटने लगा।

जो लोग इस करुण दृश्य को देखकर अपने बैरक में लौटे उनका मन भीतर ही भीतर घबड़ा रहा था। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो संतसिंह के साथ घोर अन्याय किया गया हो। संतसिंह के पल्टन वालों में रोज़ इसकी चरचा चलने लगी। उनमें अशान्ति फैल गई। जब फ़ाउलर साहब को यह ख़बर लगी तो उन्होंने तार देकर दूसरी पल्टन मँगवा ली और इस पल्टन को बाहर भेजवा दिया।



बाइसवाँ परिच्छेद ।



पैरों में काला फुल बूट पहिने हुए जिसमें चमड़े का फ़ीता लगा हुआ था और ऊपर से ऊनी मोज़ा डाटे एक सिपाही अपने डेरे के सामने टहल रहा था। कमीज़ की बाँह उसने टिहुनी तक सिकोड़ ली थी, गले का बटन खुला हुआ था। हाफ़ पैंट पर पेटी खूब कस कर बँधी हुई थी ।

अभी दोपहर होने में देर थी। ऐसे समय में पसीने से तर मनुष्य को इमली के सघन वृक्षच्छाया के नीचे बैठने में बड़ा आनन्द आता है। डेरे के पास ही एक इमली का बड़ा सा वृक्ष था, उसी के नीचे वह सिपाही जाकर बैठ गया। मृत्यु धीरे धीरे बह रही थी। वह दोनों पैरों के घुटनों को हाथ से पकड़ कर कुछ सोचने लगा ।

एक भंगी उसी वृक्ष के नीचे सूखी लकड़ियाँ बीन रहा था। उसने पृथ्वी पर एक मैले वस्त्र का टुकड़ा बिछा दिया था। उसी पर वह वृक्ष की छोटी छोटी सूखी हुई शाखाएँ बटोर कर रखता जाता था। उस सिपाही ने भंगी को पुकारा—"ज़रा इधर आना भाई !"

भंगी ने निकट आकर कहा,—"हुज़ूर !"

सिपाही—"तुम यहीं रहते हो ?"

भंगी—"हाँ हुज़ूर मैं इसी छावनी में नौकर हूँ ।"

सिपाही—"तुम कितने दिनों से यहाँ काम करते हो ?"

भंगी—"सत्रह वर्ष से।"

सिपाही—"तुम्हें मालूम है अब नगर की दशा कैसी है?"

भंगी ने उसके प्रश्न का उत्तर देकर स्वयं पूछा—"हुजूर क्या कल वाली पल्टन में आप हैं?"

सिपाही—"हाँ।"

भंगी—"तभी आपको यहाँ का कुछ हाल नहीं मालूम है।"

सिपाही—"कैसा हाल?"

भंगी—"आपकी पल्टन के आने के पहले यहाँ एक पल्टन मौजूद थी परन्तु वह यहाँ से हटा दी गई, यह आपको मालूम है?"

सिपाही—"हाँ इसकी कुछ सुनगुन मुझे मिली है। भंगी ने पीछे घूम कर देखा कोई आता तो नहीं, उसने कहा,—"उसके यहाँ से बाहर भेजे जाने का कारण आप जानते हैं?"

सिपाही—"नहीं।"

भंगी—"उस फौज के लोग बिगड़ गए थे।

सिपाही—'क्यों?"

भंगी—"उनके एक साथी को कोर्ट मार्शल करके गोली मार दी गई थी।"

सिपाही—"क्यों? उसका कोर्ट मार्शल क्यों हुआ था?"

भंगी—"उसने एक ज़िमींदार को बचाने के लिये एक गोरे को मार डाला था?"

सिपाही—"उसका नाम क्या था?"

भंगी—"किसका? गोरे का?"

सिपाही—"हाँ।"

भंगी—"उसका नाम तो मुझे याद नहीं है।'

सिपाही—"जिसने मारा था उसका क्या नाम था?"



भंगी-(कुछ देर सोच कर) "हाँ याद आ गया। संतसिंह।"

सिपाही संतसिंह का नाम सुन कर चौंक पड़ा। उसने अपने को सँभाल कर पूछा—"संतसिंह की पल्टन कहाँ से आई थी ?"

भंगी—"बम्बई से।"

सिपाही—"वे लोग लड़ाई में कहीं बाहर युद्ध करने नहीं गए थे ?"

भंगी—"हाँ उन लोगों से जब कभी बात चीत होती थी, तो वे जर्मनी के युद्ध का हाल बताया करते थे।"

वार्तालाप करते समय भंगी पीछे घूम घूम कर देखता जाता था। उसने देखा कि कोई छावनी की तरफ़ से चला आ रहा था। वह चट उठ कर खड़ा हो गया और कहने लगा,—"मैं जाता हूँ।" वह सिपाही चिन्ता-सागर में निमग्न था, उसने एक शब्द भी नहीं सुना। भंगी ने लकड़ियों के ढेर को दोनों ओर से हिलाया डुलाया जब गट्ठर कुछ छोटा हो गया तो उसे बाँध कर सिर पर रख लिया। और अपने घर की ओर चला गया।

वह मनुष्य जिसे दूर से देख कर भंगी उठ खड़ा हुआ था अब बहुत निकट आ गया। उसने आते ही चिल्ला कर कहा,—"हीरा सिंह तुम यहाँ बैठे हुए हो। वहाँ सब लोगों की हाज़री हो रही है।"

हीरासिंह ने उठते उठते पूछा,—"इस समय कैसी हाज़री ?"

हवलदार ने कहा,—"नौकरी है कि तमाशा ? जिसी समय अफ़सर आज्ञा देंगे उसी समय काम करना पड़ेगा।"

हीरासिंह,—"आप खफ़ा क्यों होते हैं ? मैं तो यही पूछ रहा था कि इस समय हम लोग क्यों बुलाए गए हैं।"

हवलदार ने कहा,—"बहुत से लोग गिरफ्तार किए गए हैं। उनको दंड की आज्ञाएं सुनाई जा रही हैं। उन्हीं पर पहरा देने के लिए ड्यूटी बँट रही है। इसके लिए बहुत से सिपाही बुलाए गए हैं।"

हीरासिंह हवलदार साहब के साथ साथ चलने लगा। छावनी पर आकर हवलदार साहब ने फिर हल्ला मचाया,—"सब लोग जल्दी चलो। क्या कर रहे हो ? घंटों तुम लोगों से उठा ही नहीं जाता।" लोग वर्दी पहिन कर तैयार हो रहे थे। हीरासिंह ने भी जाकर साफा आदि पहिन लिया और बाहर आकर अन्य सिपाहियों के साथ खड़ा हो गया। अब भी कोई जल्दी जल्दी साफ़ा बाँध रहा था, कोई पेटी लगा रहा था। देर होती देख कर हवलदार साहब ने कहा,-"अच्छा, हम इन लोगों को लेकर चलते हैं बाक़ी लोग पीछे से आना।"

हवलदार उन सिपाहियों को लिए हुए कर्नल साहब के बँगले पर पहुंच गए। हवलदार साहब ने लोगों को डाँट फटकार कर जो समय बचाया था वह व्यर्थ चला गया। कर्नल साहब दोपहर का भोजन खा रहे थे। पौन घंटे के बाद एक एक करके लोगों की पेशी हुई। हीरासिंह का भी नंबर आया। उसको सिर से पैर तक कर्नल साहब ने देख कर सामने रक्खे हुए काग़ज़ की ओर ताका और फिर कहा,—"तुम्हारा नाम हीरासिंह है ?"

हीरासिंह ने कहा,—"हाँ हुज़ूर।"

कर्नलसाहब ने कहा,—"परसों रात को दस बजे से एक बजे तक तुम्हारा १३ नं० के कैदखाने की कोठरी पर पहरा रहेगा।"

हीरासिंह ने कहा,—"बहुत अच्छा।"

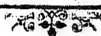
हीरासिंह सलाम करने के बाद बाहर निकल आया। उस दिन रात में भोजन करने के उपरान्त जब वह बिस्तर पर लेटा तो संतसिंह की मूर्ति उसकी आखों के सामने नाचने लगी। वह कभी चित लेटता, कभी पैर सिकोड़ लेता, कभी सिर पर हाथ रख कर ध्यान को दूसरी ओर कर प्रयत्न करता परन्तु उसकी बेचैनी बढ़ती ही जाती थी।

पास में लेटे हुए उसके साथी ने पूछा,—"क्यों हीरासिंह, क्या नींद नहीं आती है।"

हीरासिंह ने कहा,—"नहीं भाई, मुझे बड़ा बुरा मालूम हो रहा है।

उसके मित्र ने पूछा,—"क्यों क्या बात है?,,

हीरासिंह ने कहा,—"तुम्हें याद होगा जब हम लोग फ्राँस से भारतवर्ष के लिए रवाना हुए थे तब मुझे यह जान कर कि ८६ नं० सिक्ख पल्टन दस दिन पहिले ही से जा चुकी है कितनो प्रसन्नता हुई थी। उसमें मेरा एक घनिष्ट मित्र था। मुझे अखबारों से पता चला था कि उसने लड़ाई में बड़ा नाम कमाया था उसे पुरस्कार स्वरूप विक्टोरिया क्रास भी मिला था। उस दिन मैं सोच रहा था कि उससे मिलने पर मैं उसे घंटों हृदय से लगाए रहूंगा। आज वह बात स्वप्न हो गई। मेरी आशा पर तुषार पड़ गया। संतसिंह का यहीं कोर्ट मार्शल हुआ और वह गोली से मार दिया गया।"



उसके मित्र ने कहा,—"मैंने भी एक सिपाही के यहाँ मारे जाने की बात सुनी थी। क्या वही तुम्हारा मित्र था।"

हीरासिंह—"हाँ वही अभागा मेरा मित्र था।"

वह मनुष्य हीरासिंह को सान्त्वना देने लगा। कहने लगा,—"संतसिंह के लिए सोच न करो। उनकी जान परोपकार में गई है। उन्हें स्वर्ग में स्थान मिलेगा।"



तेइसवाँ परिच्छेद ।

राय साहब लाला किशनचन्द क़ैदखाने की एक कोठरी में अकेले पड़े हुए थे। कई दिन से उन्होंने उस सिपाही के अतिरिक्त जो उनकी कोठरी में रोज़ खाना रख जाया करता था किसी मनुष्य की सूरत तक नहीं देखी थी। हाँ, एक भंगी भी आया करता था। वह सुबह शाम पैख़ाना साफ़ कर जाता था। वह पाख़ाना उसी कोठरी के एक कोने में बना हुआ था जिसमें वे क़ैद थे।

आठ बज गए थे। लाला किशनचन्द की कोठरी में भी कुछ प्रकाश हो गया था। वे मौन बैठे हुए नख से दीवाल पर चिह्न बना रहे थे।

यकायक उनकी कोठरी का द्वार खुला और सामने बंदूक पर संगीनें चढ़ाए चार सिपाही खड़े दिखाई दिये। एक ने कहा,—"उठो, आज कमीशन के सामने तुम्हारी पेशी होगी।"

लाला किशनचंद उठ कर बाहर चले आए। सिपाहियों में से एक ने आगे बढ़ कर उनको हथकड़ियाँ पहिना दीं और उन्हें बीच में करके चलने लगे। बाहर क़ैदियों वाला मोटर खड़ा था, उस पर किशनचन्द को चढ़ा कर दो सिपाही आगे और दो पीछे बैठ गए।

मोटर चलने लगी। जिधर से होकर जा रही थी उधर फौजी सिपाहियों के झुण्ड के झुण्ड खड़े थे। बहुत से क़ैदी बँधे हुए पैदल चले जा रहे थे। एक स्थान पर नंगे करके

किसी के बेंत लग रहे थे। दो तीन बार उसकी चीत्कार ने आकाश को हिला दिया, फिर कुछ सुनाई न पड़ा।

मोटर जार्ज स्कूल के सामने आकर खड़ी हो गई। जिस समय सम्राट् जार्ज गद्दी पर बैठे थे उस समय लाला किशनचन्द्र ने उस शुभ अवसर की स्मृति में इस स्कूल का निर्माण कराया था। स्कूल बालकों के कोलाहल से शून्य था। वहाँ शांति बड़े गर्व से अपनी महत्ता प्रमाणित कर रही थी।

स्कूल के आगे एक शामियाना खड़ा था। चारों ओर गोरे और सिक्ख पल्टनों से वह परिवेष्ठित था। पल्टनें पत्थर की मूर्तियों की भाँति स्थिर खड़ी थीं।

किशनचन्द्र मोटर से उतार लिए गए। वे खड़े होकर शामियाने की ओर देखने लगे। एक सन्यासी जिसका मुखचंद्र कान्ति से देदीप्यमान था शामियाने के बाहर आता हुआ दिखाई दिया। उसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई थीं। उसके पीछे और कई बन्दी चल रहे थे। पास में खड़े हुए सिपाहियों में से दो चार ने कहा,—"देख लो स्वामीजी को प्राण-दंड मिला है फिर भी वे कितने प्रसन्नचित्त हैं?"

एक सिपाही जो शामियाने के पास से चला आ रहा था, बोला,—"वे बड़ी निर्भयता से कमीशन के सामने बातें कर रहे थे।"

एक ढलती हुई उमर वाले सिपाही ने कहा,—"स्वामी, सन्यासी को किसका डर?"

लाला किशनचंद्र स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी को पहिचान गए। उन्हें विश्वास था कि स्वामीजी अवश्य निरपराध होंगे। जब ऐसे स्वार्थरहित मनुष्य को फाँसी का कठोर दंड मिला तो उनके लिए क्या आशा थी।

तेइसवाँ परिच्छेद।



स्वामी जी और उनके साथी कैदियों की मोटर पर चढ़ कर चले गए। किशन चंद की पारी आई। सिर लटकाए आशाशून्य हृदय लिए वे कमीशन के सामने जाकर खड़े हो गए।

एक मेज़ के पीछे दो तीन अंगरेज बैठे थे। इन्हीं लोगों के हाथ में सैकड़ों मनुष्यों की जीवन लीला बनाने बिगाड़ने का अधिकार था।

कमीशन की ओर से किशनचंद को उनका अपराध बतलाया गयाः—विश्वेश्वरानंद के राज विद्रोही-मंडल के लोग किशनचंद के यहाँ आया जाया करते थे। उस रोज़ रात्रि में जोन, और पिपलो ने उनके घर से कई मनुष्यों को निकलते देखा था। वे देखने से विश्वेश्वरानंद की मंडली के मनुष्य मालूम होते थे। इससे यह बात सिद्ध होती है कि किशनचंद उनके गुप्त मंत्रणा में सम्मिलित था। उपरोक्त घटना के कुछ ही समय बाद सात आठ आदमियों को लिए हुए किशनचंद अपने घर से बाहर निकला। जोन के टोकने पर वह उस पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हो गया, अपनी रक्षा करनेके लिए जोन ने किर्च निकाली, उसी समय संतसिंह ८३ सिक्ख पल्टन का सिपाही वहाँ आ गया। वह भी राजविद्रोहियों से मिला हुआ था। उस ने जोन को गोली से मार दिया। पिपलो ने भाग कर अपनी जान बचाई। संतसिंह को कोर्टमार्शल द्वारा प्राण दंड मिला। किशनचंद के विपक्ष में केवल पिपलो की ही गवाही नहीं है। घटना स्थल पर किशनचंदके दो नौकर भी गिरफ्तार किए गए थे। वे भी इसी बात का पृष्टपेषण करते हैं।



अपराधपत्र में संत सिंह के प्राण दंड का हाल सुन कर किशन चंद का सिर घूम गया । उन्हें अपने उपकारी का अनिष्ट सुन कर जो दुख हुआ उसके कारण वे अपनी पैरवी भी अच्छी तरह न कर पाये। जो कुछ उन्होंने कहा उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिए उनके पास कोई गवाह भी तो नहीं थे। उस समय केवल जार्ज स्कूल मौन खड़ा हुआ उनकी राज-भक्ति का प्रमाण दे रहा था। परन्तु उसकी ओर कौन देखता है ?

कमीशन का फैसला पढ़ कर सुनाया गया:—"किशन-चंद को आजन्म काले पानी का दंड दिया जाता है और उनकी जायदाद जब्त की जाती है।'

एक क्षण में रायसाहब लाला किशनचंद के भाग्य का निपटारा हो गया।



चौबीसवां परिच्छेद।



घंटा बजा टन् टन् टन्...... ! रात्रि के दस बज गए। पहरा बदल गया।

कोटियों नक्षत्र नील वर्ण आकाश में फैले हुए थे। शुभ्र ज्योत्स्ना स्थान स्थान पर छाया के कारण मैली हो रही थी। चंद्र की दो चार किरणें सीकचों के बीच से हो कर बन्दी की कोठरी में प्रवेश कर रही थीं। बन्दी का आधा शरीर चांदनी में था, आधा अंधकार में। वह उच्च स्वर से कंठाग्र गीता के श्लोक पढ़ रहा था। नया प्रहरी बड़ी तीव्र दृष्टि से उसकी ओर बार बार घूर रहा था।

बन्दी का श्लोक पढ़ना बंद हो गया। प्रहरी ने निकट आकर पूछा,—"स्वामी जी, आप क्यों पकड़े गए ?"

कैदी को गेरुआ वस्त्र पहिने हुए ही देख कर प्रहरी ने उसे स्वामी जी कह कर पुकारा था। प्रहरी का मुख देख कर बंदी चौंक पड़ा, परन्तु उसने अपने मन का भाव छिपा कर कहा,—"भाई इसे जान कर तुम क्या करोगे।

प्रहरी ने कहा,—"आपका व्यवहार देख कर मुझे आश्चर्य होता है ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि आप नितान्त निर्दोष हैं।"

बंदी ने कहा,—"हाँ, तुम ने ठीक समझा। मैं बिल्कुल निरपराध हूं।"

प्रहरी ने पूछा,—"तो आपके ऊपर कौनसा अपराध लगाया गया ?"

बंदी ने उत्तर दिया—"राजविद्रोह का।"

प्रहरी,—"सो कैसे ?"

बंदी,—"कुछ दिनों की बात है यहाँ एक किंवदन्ती फैल गई थी कि अमृतसर में सिक्खों के स्वर्णमन्दिर पर गोला बरसाया गया है। इससे जनता में घोर अशांति फैल गई। उन्होंने क्रोध से पागल होकर सरकारी दफ्तरों पर आक्रमण कर दिया। डाकखाने में आग लगा दी। मैं उसी समय वहाँ पहुँच गया। लोगों को शांत करता जाता था और पीपे के पानी से आग बुझाने का भी प्रयत्न कर रहा था। इतने में फ़ौज ने आकर हम सबको गिरफ्तार कर लिया। मैं कमीशन के सामने पेश किया गया। गवाहों ने कहा कि यह स्वामी ही सबका नेता था। यही मिट्टी के तेल के पीपे डाल कर अग्नि प्रज्वलित कर रहा था।"

प्रहरी ने पूछा,—"बस इसी प्रमाण पर आपको फाँसी की आज्ञा सुना दी गई ?"

स्वामी जी हँसे। कुसमय की हँसी को देख कर प्रहरी को बड़ा आश्चर्य्य हुआ! ऐसा विचित्र मनुष्य उसने पहिले कभी नहीं देखा था। मृत्यु निकट खड़ी हो और निश्चेष्ट भाव से किसी के अधरों पर हँसी छा जाय, वह मनुष्य नहीं होगा देवता होगा।

स्वामी जी ने हँसते हुए कहा,—"एक प्रमाण और था। मैं घर [illegible] २१) रु० और कुछ पैसे लेकर चला था। वह मेरे जे[illegible] पड़ा हुआ था। डाकखाने का सारा सामान भस्म हो [illegible] मिट्टी में मिल गया। केवल कुछ अधजले

रजिस्टर बच रहे थे । उन में प्रति दिन की आय के ब्योरे वाला रजिस्टर भी था। उस दिन का बैलन्स उसने २५) रु० १० आने ५ पाई लिखा था। मेरे जेब में तलाशी लेने पर २५) रु० और कुछ पैसे मिले थे। बस न्यायाधीश के विचार में यह बात स्वतः सिद्ध थी कि मैं ही उन पच्चीस रुपयों का लूटने वाला था और जो रुपया मेरे पाससे बरामद हुआ था वह डाकखाने का ही रुपया था।"

प्रहरी के हृदय पर स्वामी जी की बातों का गहरा प्रभाव पड़ रहा था। कोई अदृश्य शक्ति उसको साधु की ओर खींच रही थी। वह कुछ देर चुप रहा। फिर दृढ़ता से बोला- "स्वामी जी, मैं आपको इस कारागृह से मुक्त करूँगा।"

स्वामीजी ने आश्चर्य्य से कहा,—"तुम पागल तो नहीं हो गए हो।"

प्रहरी ने कहा,-"मैं सच कहता हूँ मैं आपको छुड़ा दूंगा।"

स्वामी,—"फिर तुम्हारा क्या होगा ?"

प्रहरी—"आप मेरी चिन्ता न करिए।"

स्वामी जी—"तुम पकड़ लिए जाओगे।"

प्रहरी—"तो क्या होगा ?"

स्वामी जी—"इसका तुम्हें दंड मिलेगा।"

प्रहरी—"इसकी मैं परवाह नहीं करता।"

स्वामी जी—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं अपने प्राण बचाने के लिए दूसरे के प्राण को संकट में नहीं डालना चाहता।"

प्रहरी ने देखा कि स्वामी जी अटल हैं। वे कभी उस को आफ़त में फँसा कर अपनी जान बचाना पसन्द न करेंगे, इस लिए उसने कहा,—"मैं भी भाग जाऊँगा।"



स्वामी जी ने कहा,—"भाई, सच बात तो यह है कि मैं भाग कर छिपे छिपे घूमना नहीं चाहता। इस प्रकार का जीवन किस काम का होगा। प्रत्येक पत्ते की खड़कन के साथ मेरा हृदय काँप उठा करेगा। मित्र से मैं दिल खोल कर मिल भी न सकूँगा। हर घड़ी दिल में भय और संशय ही बना रहेगा। मुझे मरने दो, इसी में मुझे सुख है। मेरे जीवन की सारी आशाएँ निराशा के घोर तम में विलीन हो चुकी हैं। अब जीने की मेरी इच्छा भी नहीं है। मुझे उसी से संतोष है कि मैं अपना कर्त्तव्य पालन करते ही करते फाँसी पर चढ़ रहा हूँ। केवल एक काम बाकी है। यदि तुम उसे कर सको तो अन्तिम समय मेरी आत्मा तुम्हें आशीर्वाद देगी। बोलो राजी हो?"

प्रहरी ने कहा,—"तन मन धन सभी से।"

स्वामीजी ने कहा,—"अच्छा तो निकट आओ। मैं मरते मरते तुम्हें अपना भेद बतला दूं। तुम्हीं उस रहस्य के जानने के अधिकारी हो।"

प्रहरी निकट जाकर बैठ गया। उसने बन्दूक किनारे रख दी। उसके और स्वामीजी के बीच में केवल लोहे की छड़ें थीं। स्वामीजी ने अपनी कहानी प्रारम्भ की। पहिले तो प्रहरी आश्चर्य से आँखें फाड़ फाड़ कर देखने लगा। फिर उसके मुख पर विषाद की छाया देख पड़ी, उसके नेत्रों में अश्रु छलछला आए। उसने उठते उठते कहा,—"आज से आपने मेरे जीवन को दुखमय बना दिया। आज की बातें जब कभी मुझे याद आवेंगी मेरे हृदय पर साँप लोटने लगेगा। मैं आपको छुड़ा न सका। आपके प्राणों की रक्षा करने का उपाय मेरे पास था और मैं आपको बचा न पाया!

चौबीसवाँ परिच्छेद।



स्वामीजी ने कहा,—" छिः कैसी बातें करते हो? मैं स्वयं छूटना नहीं चाहता। हैं तुम रोते हो? यह क्या?"

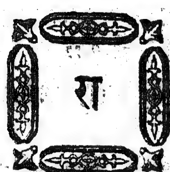
इसी समय 'एक' का घण्टा बजा और दूसरा प्रहरी आकर उपस्थित हो गया। उसने इस प्रहरी को देख कर कहा,—" हीरासिंह, तुम्हारे आँखों में आँसू कैसे हैं?"

हीरासिंह ने आँखें मलते हुए कहा,—" कुछ नहीं, आँख [illegible] पड़ गई है।"

[illegible] की नज़र बचा कर

पृष्ठ संख्या में भूल से १३७ के स्थान पर १६७ छप गया है। कृपा कर पाठकगण इसे सुधार लेंगे।

पच्चीसवाँ परिच्छेद।



त जैसे तैसे कट गई। दूसरे दिन सुबह उठते ही हीरासिंह ने अपने एक मित्र से कहा,—मैं अब नौकरी नहीं करना चाहता हूँ।"

उसके मित्र ने पूछा,—"क्यों?"

हीरासिंह ने कहा,—"घर पर मन लगा हुआ है। मैं आज ही घर चला जाऊँगा।"

उसने कहा,—"तुम तो कहा करते थे कि घर पर मेरे कोई नहीं है, फिर किसके पास मन लगा हुआ है।"

हीरासिंह को स्मरण नहीं रहा था कि उसने अपने बन्धु-बांधव हीन होने की बात कभी उससे कह दी थी। उसने तुरन्त बात बना कर कहा,—"हाँ, कोई निकट का सम्बन्धी घर पर नहीं है, परन्तु एक स्त्री रहती है वह दूर के सम्बन्ध से मेरी भाभी लगती है। वह मुझे छोटेपन में बड़ा प्यार करती थी। उसी को देखने का बड़ा जी चाहता है।" हीरासिंह ने सारी बातें गढ़ कर कही थीं।

उसके मित्र ने कहा,—"तो इतनी क्या जल्दी पड़ी है? दस पाँच दिन में छुट्टी मिल जायगी। रुपया भी मिलेगा। दो दिन के लिए उसे क्यों खोते हो।"

हीरासिंह ने कहा,—"नहीं, अब मुझसे नहीं रहा जायगा।" उसने उसी दिन जाकर इस्तीफ़ा दे दिया। साहब ने कहा कि आठ दस दिन में तुम्हारा विसर्जनपत्र स्वीकृत हो जायगा, तब तक प्रतीक्षा करो। उसे पल भर की भी कल नहीं

थी। उसने साहब के हाथ पैर जोड़े, बहुत चिरौरी बिनती की। अंत में हार मानकर साहब ने इस्तीफ़ा मंजूर कर लिया।

कंधे पर झोला लटकाए बग़ल में बिस्तर दबाए—हीरासिंह नगर की ओर चल दिया। बाजार में कुछ दूकानें खुली हुई थीं। थोड़े बहुत मनुष्य चलते फिरते भी दिखाई देते थे। परन्तु उपद्रव के पूर्व की सी शोभा न थी। राहगीर हीरासिंह को घूर घूर कर देख रहे थे। परन्तु वह उधर ध्यान नहीं देता था। जल्दी जल्दी पग बढ़ाता हुआ चला जा रहा था। उसने एक धर्मशाले में अपना झोला झंटा उतारा और वहीं पृथ्वी पर बैठ कर कुरते से हवा करने लगा। जब शरीर कुछ शीतल हुआ और मार्ग का श्रम मिटा तो उसने कुएँ पर जाकर पानी भरा और एक ही साँस में लोटा भर जल पी गया।

धर्मशाला के कहार को देख कर उसने पूछा,—"कोठरी खाली है।" एक कोठरी की ओर संकेत करते हुए कहार चला गया। उसमें अपना असबाब रख कर उसके बाहर से ताला लगा दिया।

शाम होने को बहुत देर नहीं थी। उसे भूख खूब लगी हुई थी। वासकट की जेब से पैसे निकाल कर उसने गिने। उन्हें फिर जेब में रख कर वह बाज़ार में एक हलवाई की दूकान पर गया और पूड़ियाँ खरीदने के बाद एक तख़्त पर बैठ कर दोनों हाथ से खाने लगा। पेट पर हाथ फेरते हुए दो कुल्हड़ पानी चढ़ा कर, मुंह धोती से पोंछ कर वह एक बिसाती की दूकान पर गया। मोमबत्ती दियासलाई की डिब्बी खरीद कर उसने जेब में रख लिया और वहाँ से सीधे पश्चिम की ओर चल दिया। बस्ती बहुत पीछे छूट गई थी। यह स्थान

बिल्कुल निर्जन था। यदि कोई लुटेरा मार पीट कर माल मता छीन ले तो चिल्लाने से सहायता भी नहीं मिल सकती थी। हीरासिंह निर्भीकता से उस निर्जन स्थान से होता हुआ एक वृक्ष के पास पहुंचा। उसने मोमबत्ती जला कर प्रकाश किया और दरख्त के खोखले के पास से घास और पत्ते हटाने लगा। थोड़ी देर के बाद उसे एक पत्थर दिखाई दिया। बड़ा बल लगा कर उसने उसे ऊपर उठाया। उसके नीचे एक काठ का बक्स रक्खा हुआ था। उसे खोल कर उसने दो रुपयों की थैली निकाली और एक नोट का पुलिंदा।

बड़ी होशियारी से वह रुपयों को कमर में बाँध कर और बक्स को हाथ में लेकर वहाँ से लौट पड़ा। एक गँदले तालाब के निकट आकर उसने बक्स को उसी में फेंक दिया। छप की ध्वनि के साथ बक्स तालाब की तह में बैठ गया। जल-तल पर परिधि के रूप में हलकी लहरें उठने लगीं।

हीरासिंह एक क्षण भी वहाँ नहीं ठहरा, सीधे, धर्मशाले को लौट आया। रात भर वह कोठरी के भीतर जंजीर लगा कर पड़ा रहा। सूर्योदय होते ही फिर अपना सामान पीठ पर लाद कर, वहाँ से चल दिया।

शहर की सड़कों पर भंगी झाड़ू दे रहे थे। कुछ लोग दूकानें खोलने के लिए कुंजी का गुच्छा हाथ में लटकाए हुए चले जा रहे थे। परन्तु आज और दिनों से सड़क पर अधिक भीड़ थी। लोग आपस में धीरे धीरे बात कर रहे थे:— "आज स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी को फाँसी हो गई।"

एक ने कहा,—"उनके साथी भी तो आज ही फाँसी पर चढ़ाए गए हैं।

दूसरे ने कहा,—"सुनते हैं फाँसी के तख्ते पर खड़े होते समय भी स्वामी जी मुस्कुरा रहे थे।"

तीसरे ने कहा,—"स्वामी जी मृत्यु को कब डरते थे? जब भय के मारे लोग घरों में घुसे बैठे थे तब तो वह आधी रात को लोगों की सेवा करते घूमते ही थे।"

दूसरे ने कहा,—"ऐसे परोपकारी मनुष्य की मृत देह तक लोगों को नहीं दी गई। वहीं कहीं गाड़ दी गई। यह विष-वृक्ष उत्पन्न करेगा।"

हीरासिंह ने सब बातें सुनीं। वह पहले ही से जानता था कि होनी होकर रहेगी। फिर भी उसे यह सम्बाद सुनकर मार्मिक पीड़ा हुई।

छब्बीसवाँ परिच्छेद ।



जब दिया जलते जलते वह पंडरी ग्राम में पहुँचा तो थक कर एक लकड़ी के कुन्दे पर बैठ गया। कुछ देर सुस्ताने के बाद वह गांव में घुसा। उसने देखा कि एक छोटी सी मड़ैया के नीचे उसका जेल का पुराना मित्र गंगादीन एक मुसलमान के निकट बैठा हुआ हुक्का पी रहा है।

अत्यंत आश्चर्य्य और उत्साह से हीरासिंह उससे जाकर लिपट गया। हीरासिंह को पहिचान कर वह आनन्द के मारे सुध बुध भूल गया। वह मड़ैया के नीचे से मैदान में बाँस वाली खाट खींच लाया और उस पर हीरासिंह को बिठा कर उसने हाल चाल पूछना आरम्भ किया। जेल से मुक्त होकर फौज में भर्ती होने से लेकर उस दिन तक का सारा हाल हीरासिंह सुना गया।

जिस समय उसने स्वामी जी के फाँसी की बात कही उस समय गंगादीन की आँखों में आँसू आ गए। उसने बड़े कष्ट से कहा,—"जिस समय मैं जेल से छूट कर आया था स्वामी जी ने मुझे दो गाय ख़रीद दी थी। उसी का दूध बेचकर मैं पेट पालता हूँ।"

उसने सामने उँगली उठाकर कहा,—"वह देखो, वह दोनों गायें बँधी हुई हैं। जब कभी वे आते थे वे खड़े खड़े गायों की पीठ सुहराया करते थे, मैं लोटे में दूध भर लाता और उनसे कहता था, स्वामी जी लीजिए यह आपही का



दूध है' वे हँस कर लोटा ले लेते और वहीं बैठकर दूध पी जाते थे। जब कभी मैं रुपया पटाने की बात कहता था तो वे रुष्ट हो जाते थे। इतने दयालु मनुष्य को सरकार ने फाँसी लगवा दी ?"

उसने एक ठंढी साँस ली और कहना आरम्भ किया,—"वे तो निस्वार्थ होकर लोगों का उपकार किया करते थे। बहुत दिन नहीं हुए उनके एक साथी एक आहत मनुष्य को मेरे यहाँ रख गये थे। कह गए थे कि कल स्वामी जी के साथ आकर इसे देख जाऊँगा। वह मनुष्य मर गया, परन्तु वे लौट कर न आए। आते कैसे, वे इस संसार में होते तब तो आते। हाय! अब स्वामी जी के कभी दर्शन न होंगे।" गंगादीन अङ्गौछे से आँख के आँसू पोंछ रहा था।

हीरासिंह ने पूछा,—"तुम्हारे यहाँ किस आदमी को वे रख गए थे ?"

गंगादीन ने कहा,—"वह बड़ी लम्बी कथा है। मुँह हाथ धोओ। कुछ जलपान कर लो तब कहूँगा।"

हीरासिंह ने कहा,—"मुझे अभी भूख नहीं लगी है। तुम उस आदमी की कथा कहो, मैं सुनने के लिए बड़ा उत्सुक हूँ।"

गंगादीन ने कहा,—"नर्क की यंत्रणा क्या उससे भी भीषण हो सकती है? वह, पीड़ा के कारण छटपटाता था। कभी यातना असह्य हो जाती थी तो वह चिल्लाने लगता था—'या खुदा मुझे जल्दी मौत दे' 'या अल्लाह मुझे इस दोजख़ की आग से बचा!' मैं उसके इस व्यथा विहित प्रलाप को सुनकर अत्यंत दुखी होता। सहायता के लिए (गंगादीन ने समीपस्थ मुसलमान मित्र की ओर संकेत

करके कहा) कभी कभी अपने इन मित्र ज़फ़र को बुला लेता। यह भी दिन रात उसकी सेवा करते । मृत्यु के एक दिन पूर्व उसने दुख और पश्चात्ताप के उद्वेग में अपनी सारी जीवनकथा कह सुनाई। उस समय ज़फ़र भी बैठे थे। इन्हीं के मुख से वह हाल सुनो, इन्हें खूब अच्छी तरह से वह बातें स्मरण हैं।"

ज़फर ने गंगादीन से कहा,—"नहीं, तुम्हीं कहो।"

गंगादीन ने कहा,—"नहीं, जफ़र मियाँ तुम सुना दो।

हीरासिंह ने ज़फ़र से कहा,—"तुम्हें अच्छी तरह से याद है। भाई, उसमें हर्ज क्या है तुम्हीं सुना दो।"

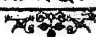
थोड़ी देर तक और टालमटूल करने के बाद ज़फ़र ने हीरासिंह की ओर मुख करके कहना आरम्भ किया—

"भाईसाहब, एक दिन उसकी तकलीफ़ जब कुछ कम हुई तो उसने गंगादीन को अपने नज़दीक बुलाया। मैं भी वहीं आकर बैठ गया। वह कहने लगा,—"भाई, अब मैं मरता हूँ। लेकिन मरने के पहले अपने दिल का बोझ कुछ हलका कर डालना चाहता हूं। मेरे पाप की गठरी इतनी भारी है कि मैं उसे लिए हुए दोज़ख़ की आग से निकल करके भाग न सकूंगा। आकबत में मेरी क्या हालत होगी मैं ही जानता हूँ। उफ़, जब मैं अपने गुनाहों का ख्याल करता हूँ तो मेरा दिल दहल उठता है। मैं अपने ज़ुल्मों को याद करके काँप उठता हूँ। मैंने दीन दुखियों के बसे हुए घर उजाड़े, बे-गुनाहों को आफ़त में फँसाया, उसी की मुझे सज़ा मिल रही है। आह! वह मेरे लिए क़हर का दिन था, जब मेरे वालिद मरे थे।"

इतना कहने के बाद वह चुप हो गया। उसकी साँस फूलने लगी थी। कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने सिर फेरा और धीरे से कहा,—"गंगादीन, क्या चले गए?"

गंगादीन ने कहा,—"नहीं, मैं यहीं बैठा हूँ।"

उसने कहा,—"सुनो, मैं शेखपुर में रहा करता था। मेरे बाप जुलाहा थे, वे कपड़े बिन कर बेंचा करते थे। जो कुछ आमदनी होती थी उसी से हम लोगों की रोटी चलती थी। मैं अपने बाप का एकलौता लड़का था। वह मुझे बड़ा प्यार करते थे लेकिन उन्हें मेरे तालीम का बड़ा ख्याल था। मौलवी साहब की शिकायत पहुँची नहीं कि उन्होंने मेरे पीठ की खाल मारे बेंतों के उधेड़ दी। उन्हीं के दबाव से मैं किताबें लेकर मौलवीसाहब के मकतब में चला जाया करता था। लेकिन पढ़ने में मेरा दिल ज़रा भी नहीं लगता था। ख़ुदा की मर्ज़ी दूसरे साल प्लेग चला। मेरे वालिद का उसी में इन्तकाल हो गया। फिर क्या था? मैं हवा की तरह आज़ाद हो गया। दिन दिन भर बाहर घूमने लगा। सिर्फ़ शाम को खाना खाने के लिए घर चला आया करता था। वालिद साहब ने पेट काट कर कुछ रुपए जमा किए थे। वे थोड़े ही दिन में ख़र्च हो गए। अब फ़ाक़ामस्ती होने लगी। माँ खाली पेट खाट पर लेट जाती थी, और आँचल से मुख को ढँक कर घंटों रोया करती थी। मैं आवारा तो हो ही गया था। बड़ी जल्दी रोजी का एक ढंग निकाल लिया। कभी किसी की दूकान पर से बटली उड़ा देता था, कभी किसी की अँगूठी चुरा लेता था। उसे बेंच कर रुपए लाता और माँ का पेट पालता। एक दिन इसी तरह एक बिसाती की दूकान से चाकू का बक्स उड़ा कर चलने लगा। उसने देख लिया। पकड़ कर मुझे



पुलीस के हवाले कर दिया । माँ रोती चिल्लाती रह गई मुझे सज़ा हो गई ।''

ज़फ़र इतना ही कह पाया था कि गंगादीन बीच में बोल उठा,—"ज़रा ठहरो, अँधेरा बहुत हो गया है। मैं घर से दीपक जला लाऊँ। फिर आगे बढ़ना।"

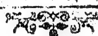
मड़ैया के पीछे एक कोठरी थी। वह उसमे जाकर एक मिट्टी का दिया जला लाया और उसे एक किनारे रख कर हीरासिंह के समीप आकर बैठ गया। हीरासिंह खाट खींच कर थोड़ा आगे बढ़ आए।

ज़फ़र ने फिर कहना आरम्भ किया,—"हाँ, मैं उस शख्स का नाम बतलाना भूल गया था। उसका नाम हैदर था, (हैदर का नाम सुनकर हीरासिंह आश्चर्य से चौंक पड़ा परन्तु ज़फ़र ने इसकी ओर ध्यान न दिया। कहता गया) हैदर ने कहा,—"मैं जब जेल से छूट कर आया तो मेरी माता मर चुकी थी। मैं कुछ दिन तक इधर उधर मारा मारा फिरता रहता। इसी आवारागर्दी में मेरा चोरों और डाकुओं से मेल हो गया। मैं दिन दहाड़े लूट मार मचाता था। आस पास के गांवों पर हमारा इतना रोब बैठ गया था कि जब जितने रुपए की आवश्यकता होती तुरन्त मिल जाता। बढ़ते बढ़ते हमारा गोल बहुत बड़ा हो गया। हम लोग दूर दूर तक छापा मारने लगे। एक दिन एक सेठजी के यहाँ डाँका डाला। लम्बी रकमें हाथ लगीं। लेकिन उसमें हमारे बहुत से आदमी ज़ख्मी हो गए, सेठजी के भी कई नौकर चाकर मारे गए। पुलिस ने बड़े ज़ोर शोर से तलाशी शुरू की। एक एक करके हम लोग सब फँस गए। लेकिन पुलीस को कोई सबूत न मिला, वह हम लोगों में से कुछ लोगों को

फोड़ने के फिराक़ में लग गई। कुछ दिन तक तो उनकी कोशिशें कारगर न हुईं लेकिन थोड़े ही दिनों में हममें से कुछ लोग फिसलने लगे। मैंने देखा मुझ में मेरी जान जाती है, मैं फ़ौरन सरकारी गवाह बन गया। मुक़द्दमा चला। उनमें से कुछ लोगों को फाँसी हो गई, कुछ लोगों को काला पानी। मैं उसी दिन से पुलीस का भेदिया बन गया। चोरी का पता लगाता। बदमाशों के अड्डों की खबर देता। मुझे खूब अच्छी तरह से मालूम रहता कि कहाँ कहाँ जुवा होता है, लेकिन बहुत कम लोग गिरफ़् में आते थे। जो लोग मेरी मुट्ठी गर्म करते रहते थे वे खूब चैन उड़ाते थे। उनके पाप का रोज़गार मज़े में चलता था। कभी कभी मैं पुलीस वालों के भी पान पत्ते के लिए इंतज़ाम कर दिया करता था। गरज़ कि मेरे पौ बारह थे।

"धीरे धीरे लड़ाई का ज़माना आया। रंगरूटों की माँग होने लगी। मैं भर्ती का एजंट बन गया। ज़िमीदार किशनचंद सरकार की खैरख्वाही में इतने ग़र्क़ थे कि उन्हें दीन दुनिया कुछ नहीं सूझती थी। अपने ही आसामियों को फ़ौज में भर्ती करवाने के लिए वे मुझे अपने ही पास से रुपए देते। मुझे कुछ सरकार से भी मिलता था। दोनों ओर से मैं रुपया ऐंठता था। लोगों को फुसला कर, दबाकर धमका कर फ़ौज में भरती करवा देने का मेरा काम था। इसमें मैंने कितने घर नहीं घाले, कितने मासूम बच्चों के मुँह का टुकड़ा नहीं छीना। उन्हीं लोगों की बद्दुआ मेरे सिर बिसा गई।

एक भला आदमी हमें राहेरास्त पर लाने की कोशिश करता था। वह ज़िमीदार साहब का सच्चा दोस्त था। दरोग़ा हरसहाय ने झूठी चुग़लियाँ खा कर ज़िमीदार साहब



और उनके बीच में मनमुटाव करवा दिया। ज़िमींदार साहब उससे जले तो थे ही डिप्टी कमिश्नर साहब ने भी उनका साथ दिया कि यह शख्स हर एक मामलात में अपनी टाँग अड़ाता है। बस दरोगा साहब और ज़िमींदार साहब ने उस बेचारे को फँसाने का जाल बनाया। मुझे भी उस राज़ में शामिल किया। राज़ में क्या शामिल किया मेरे ही हाथों से सब कुछ करवाया। दरोगा साहब ने एक सेठ के यहाँ से कुछ माल मँगवाया और मुझ से कहा कि रात में इसे शिवनाथ के मकानमें पहुंचवा दो। मैं ने ऐसा ही किया। दूसरे दिन दरोगा साहब ने उनका मकान घेर लिया। तलाशी ली गई, माल बरामद हो गया। मुकदमा चला, शिवनाथ को तीन साल सख्त कैद की सज़ा हो गई। तीन बरस भी बीत गए। शिवनाथ का पता नहीं चला। दरोगा हरसहाय को तो उनके किए का फल मिल गया। वे कुत्तों की मौत मरे। मैं भी अपनी किए करनी का फल फुगत रहा हूं। यही कहता हूँ कि या खुदा मेरे दुश्मन को भी ऐसी तकलीफ़ न देना।"

ज़फ़र ने कहा,—"इसके बाद वह फिर चुप हो गया। उसका गला सूख गया था। उसने एक घूँट पानी पीकर फिर कहना आरम्भ किया,—"हाँ तो मेरी यह गति कैसे हुई, मुझे अभी यह बतलाना है। अच्छा सुनो, मैं नगर से कुछ दिनों के लिए अपने गाँव पर चला आया था। इसी समय पंजाब में दंगा फ़साद हो गया। पल्टनों ने गुजरानवाला में आकर डेरा डाल दिया। उन्हीं दिनों मेरे मामा के लड़की का विवाह था। शेखपुर में मेरे पुराने घर पर ब्याह की रस्में अदा की जा रही थीं। ऐन निकाह के मौक़े पर बहुत से सिपाही आ पहुँचे। उन्होंने कहा—'यह क्या मजमा लगा



रक्खा है। तुम लोग बग़ावत करते हो। मैंने आगे बढ़कर कहा,—"हुजूर हमारे भाई की शादी हो रही है यह कोई नाजायज़ मजमा नहीं है।" लेकिन उन्होंने एक न सुनी। बेंत लपकाते हुए वे लोग नौशे की ओर बढ़े। मुझे गुस्सा आ गया मैंने कहा,—"ख़बरदार उधर क़दम मत रखना।" बस फिर क्या था, उस बेचारे लड़के पर बेंत की बौछार पड़ने लगी और मेरे ऊपर सब संगीन लेकर टूट पड़े। मैं ज़ख्मी होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। उस वक्त मुझे होश नहीं रहा। जब मेरी आँखें खुलीं तो मैं ने अपने को इस झोपड़ी में लेटा हुआ पाया।"

ज़फर ने कहा,—"अपनी कथा समाप्त करते करते उसके नेत्रों में जल भर आये। वह पश्चात्ताप की विषम ज्वालाओं में जल रहा था। दूसरे दिन अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करते हुए उसने प्राण त्याग दिया।"

हीरासिंह ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा,—"सचमुच बड़ी करुणाजनक कथा है।"

वायु के झोंके से दिया बुझ गया। गंगादीन ने हाथ का आड़ लगा कर उसे फिर जलाया और उठा कर मड़ैया के नीचे रखते हुए कहा,—"भाई हीरासिंह, तुम्हें भूख लगी होगी तुम यहीं आकर बैठ जाओ। मैं तुम्हारे लिए खाना पकाता हूँ।"

ज़फ़र ने बाहर ही से कहा,—"अच्छा भाई गंगादीन मैं जाता हूँ। तुम मिहमानिवाज़ी करो। मैं कल मिलूँगा।"

ज़फ़र चला गया।

हीरासिंह मड़ैया के नीचे आकर बैठ गया। गंगादीन पड़ोस से जाकर कढ़ाई आदि माँग लाया। घर में घी रक्खा हुआ

था। उसने तुरन्त चूल्हा जला कर कढ़ाई चढ़ा दी और पूड़ियाँ छानने लगा। बचे बचाए घी में उसने तरकारी छौंक ली। जब सब सामान तैयार हो गया तो दोनों मित्रों ने पास ही पास बैठ कर भोजन किया।

रात में लेटे लेटे दोनों ने बहुत देर तक बात चीत किया। सुबह जलपान करके हीरासिंह चलने पर उद्यत हो गया। उसने गंगादीन के हाथ में रुपयों की एक ढेरी रख कर कहा,—"लो तुम तंग हालत में हो, तब तक इससे काम चलाओ।"

गंगादीन ने कहा,—"नहीं, मैं इसे न लूँगा।"

हीरासिंह ने कहा,—"तुम्हें मेरी बात रखनी पड़ेगी।" हीरासिंह ने यह बात ऐसे ढंग से कही थी कि गंगादीन उसे अस्वीकार न कर सका।

चलते समय गंगादीन ने पूछा,—"हीरा अब कब मिलोगे।" हीरासिंह ने कहा,—"जब ईश्वर मिलावे।"



सत्ताईसवाँ परिच्छेद।

कहाँ खस की टट्टियों से घिरा हुआ कमरा, कहाँ अंडमन का तप्त कारागार? कल्पना मात्र से शरीर में दाह होने लगती थी! आह! उस उच्च अट्टालिका पर सरकार का अधिकार हो जायगा? वह सुन्दर और प्रिय वस्तुएं खुले बाज़ार में नीलाम होंगी? देवबाला कहाँ है? स्वामी जी भी तो पकड़ गए? न जाने अब उसकी क्या दशा हो? जो खाट से नीचे पैर नहीं रखती थी वह सड़क की ख़ाक छानती होगी? उसके जीवित ही होने की कौन सी आशा है? यदि जीवित होगी तो दासी कर्म करके पेट पालती होगी?

और मैं? मैं समुद्र के एक महा ऊजड़ द्वीप में चक्की पीसता हूँगा! मरते समय जन्मभूमि के दर्शन भी न मिलेंगे! बीस वर्ष! आह बीस वर्ष तक जीवित रहने की क्या आशा? घुल घुल कर मरना होगा। इससे तो तत्क्षण मृत्यु ही अच्छी थी। यह सोचते सोचते किशनचंद को चक्कर आने लगा। आँखें नहीं खुलती थीं। वे धीरे २ कारावास-कोठरी के द्वार के सामने आकर खड़े हो गए। उत्तप्त मस्तिष्क शीतल वायु लगने से कुछ ठंढा हो गया।

वे लोहे की ठंढी छड़ें पकड़े खड़े थे कि जेलर साहब आ पहुँचे। उन्होंने आते ही कहा, कि सम्राट् की दोष-क्षमा घोषणा प्रकाशित हुई है। आप अपने को मुक्त समझिये। आपकी सम्पत्ति भी आपको वापस मिल जायगी।"

विस्मय और आल्हाद से किशनचंद की विचित्र दशा हो गई। उन्हें जेलर की बात पर विश्वास नहीं आया। कुछ देर के बाद जब ताला खोलकर वे निकाले गए, और नगर की एक सड़क पर लाकर छोड़ दिए गए तब भी वे यही सोचते थे कि क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ।

एक गाड़ीवान ने कहा,—"हटो, हटो।" किशनचंद फिर भी खड़े रहे। उसने कहा,—"बहरा है क्या? इतनी ज़ोर से चिल्ला रहा हूं, सुनता ही नहीं है।"

इस बार की घुड़की ने किशनचन्द की मोहनिद्रा भंग कर दी। वे समझ गए कि मैं सचमुच स्वतंत्र हो गया हूँ। वे अपनी कोठी की ओर जाने लगे। वहाँ उन्होंने जाकर देखा, वृद्ध ड्योढ़ीवान प्रसन्न बदन फाटक पर खड़ा हुआ है। वह किशनचन्द को देखकर दौड़ा आया और कहने लगा,—"बाबूजी आ गए। आज ही पुलीसवालों ने आकर ताला खोल दिया है। मैंने जब से सुना कि आप छोड़ दिये गए हैं तब से यहीं आकर आप की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

बुड्ढे को साथ में लिए किशनचन्द ने कोठी में जाकर देखा कि चीज़ें अस्त व्यस्त पड़ी हुई हैं। मेज़ आदि पर गर्द जम गई है। बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ अपने स्थान से गायब हैं।

देवबाला की कोठरी में जाते समय उनकी आँखों में आँसू भर आए। वे एक क्षण वहाँ ठहरने के बाद बाहर चले आए। बरामदे में आकर उन्होंने ड्योढ़ीवान से कहा,—"आज मैं संतसिंह के गाँव पर जाता हूँ। देखूँ उसकी स्त्री की क्या दशा है? उसने हम लोगों के लिए अपनी जान दी। उसके बाल बच्चों की खबर न लेना कृतघ्नता होगी। मैं कल वहाँ से लौट



आऊँगा। तब तक तुम कोठी साफ़ करवा रखना। मालकिन की खोज लगाने के लिए भी आदमी इधर उधर भेज दो।"

मालकिन का नाम सुनकर वृद्ध ड्योढ़ीवान की आँखों में आँसू आ गए। उसे सब हाल पहले ही से मालूम हो चुका था। उसने कहा,—"हाँ हुजूर, मालकिन के खोज करने के लिए जल्दी करनी चाहिए।"

किशनचन्द उसी समय सुन्दरपुर के लिए रवाना हो गए। साँझ हो गई थी। जब वे गाँव के निकट पहुँचे तो उन्होंने कुएँ पर दो चार स्त्रियों को जल भरते और बालकों को खेलते देखा। उन्होंने एक स्त्री से पूछा,—"संतसिंह का घर कहाँ है।"

उस स्त्री ने कहा,—"इस तालाब के किनारे किनारे चले जाओ। जब उस खंड़हर के पार निकल जाओ तो दाहिने हाथ पर घूम पड़ना, वहीं नीम के वृक्ष के सामने संतसिंह का मकान है।"

किशनचन्द उधर ही चलने लगे। नीम के वृक्ष के पास आकर इधर उधर देखने लगे कि कोई दिखलाई पड़े तो पूछें, इतने में उन्हें एक बालक बाँस का घोड़ा बनाए हुए उसे झाकर की छड़ी से पीटता हुआ आता दिखाई दिया। उससे किशनचन्द ने पूछा,—" तुम्हें मालूम है संतसिंह का मकान कौन सा है ?"

वह बालक बाँस के घोड़े पर से उतर पड़ा और यह कहता हुआ,—"इधर आइए, यहीं है, आगे २ दौड़ने लगा।"

उसने एक घर में घुसकर कहा,—" अम्मा देखो कोई आया है। एक मलिनमुख स्त्री ने आकर झाँका। किशनचन्द ने पूछा,—"संतसिंह का मकान यही है ?"

उस स्त्री ने दुखित स्वर में कहा,—"हाँ बाबू यही है।"

किशनचन्द ने कहा,—"मैं उसकी स्त्री से मिलना चाहता हूँ।"

वह स्त्री घबड़ा सी गई। उसके कुछ समझ में न आया कि क्या उत्तर दूँ। उसने केवल इतना कहा,—"बाबू भीतर चले आओ।"

किशनचन्द समझ गए कि यही संतसिंह की स्त्री है। वे मकान के अन्दर चले गए। उस स्त्री ने कहा—"उधर न जाइएगा,—"उधर मेरी मालकिन रहती हैं।"

एक कृशित बदना स्त्री सामने कोठरी में खड़ी थी। उसने किशनचन्द को देखा। उसका हृदय धड़कने लगा। स्वर पहिचानते ही वह किशनचन्द के चरणों पर आकर गिर पड़ी और अश्रु-प्रवाह से उनके पैर तर करने लगी।

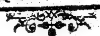
किशनचंद को इस प्रकार देवबाला से सहसा मिलकर असीम कौतूहल और सुख हुआ।

उन्होंने देवबाला को उठाते हुए कहा,—"तुम यहाँ कैसे आ गईं देवबाला।"

इस समय उनका हृदय आनन्द से गद्गद् हो गया था।

देवबाला ने कहा,—"मुझे स्वामीजी ने यहाँ एक आदमी के साथ भेजवा दिया था।"

स्वामीजी का नाम सुनते ही किशनचन्द ने दीर्घ निश्वास ली, उन्होंने कहा,—"देवबाला तुम्हें सुनकर दुख होगा। स्वामीजी को राजविद्रोह के अपराध के कारण फाँसी हो गई। मुझे भी कालेपानी की सज़ा हो गई थी, परन्तु मैं राजाज्ञा से छूट आया।"



स्त्री का हृदय कितना कोमल होता है ? स्वामीजी के फाँसी की बात सुनकर देवबाला रोने लगी। किशनचन्द ने कहा,—"धैर्य्य धरो। अभी एक और दुःख संबाद सुनना पड़ेगा। हमारे उपकारी संतसिंह को भी हमारी रक्षा के लिए गोरे को मार डालने के कारण गोली मार दी गई।"

संतसिंह की स्त्री पर बज्रपात हुआ। वह धाड़ मार मार कर रोने लगी। देवबाला विकल होकर और ज़ोर से रोने लगी। गोविन्द एक कोने में खड़ा हुआ यह व्यापार देखकर आँखों में आँसू भर लाया।

गांव के लोग इकट्ठे हो गए। जब उन्हें पता लगा कि जिमीदार किशनचंद आए हुए हैं। वही संतसिंह के मृत्यु का संबाद लाए हैं। इसी कारण से रोना धोना पड़ा है तो वे लोग दुःख प्रकाश करते हुए अपने अपने घर लौट गए।

किशनचन्द संतसिंह की स्त्री को समझाने लगे,—"तुम्हारा रोना देख कर मेरी छाती फटी जाती है। चुप हो जाओ ? धीरज धरो ? चलो तुम लोग मेरे साथ चलकर कोठी में रहो। गोविन्द को मैं अपने लड़के की तरह पालूँगा। उसे मैं बालकिशन समझ कर पढ़ाऊँगा लिखाऊँगा। ईश्वर ने मुझे भी मेरे पाप का फल चखा दिया। अब तुम्हारे पुत्र का मुख देखकर मैं अपने दिल की जलन शांत करूँगा। उठो, देखो गोविन्द रोने लगेगा।"

किशनचन्द ने देवबाला को भी बहुत समझाया। एक घंटे में रोना पटाया। परन्तु संतसिंह की स्त्री अब भी सिसक रही थी। देवबाला आँसू पोंछ रही थी। आँगन में चाँदनी फैली हुई थी। उसमें शीतलता नाम मात्र को नहीं थी।



खाट पर बैठे हुए किशनचंद एक बेर फिर उन लोगों को शान्त करने का प्रयत्न करने लगे, इसी समय किसी ने किवाड़ भड़भड़ाया। गोविन्द ने माताकी गोद से उठ कर किवाड़ खोल दिए। आगन्तुक ने पुलक कर गोविन्द को अङ्क में उठा लिया और प्यार से गाल चूमते हुए कहा,—"गोविन्द, गोविन्द, अब तुम मुझे क्यों पहचानोगे। कई बरस हो गए तब तुमने मुझे देखा था। तब तुम बहुत छोटे थे। भला कैसे याद रख सकते हो।"

गोविन्द भौचक होकर अपने को छुड़ाने के लिए बड़ी कोशिशें कर रहा था, परन्तु वह मनुष्य उसे कस कर पकड़े हुए थे। इसी तरह गोविन्द को छाती से लगाए हुए वह मनुष्य सीधा कोठरी में चला आया।

उसे देखकर देवबाला ने घूँघट काढ़ लिया। किशनचन्द ऐसे उछले मानों पैर के तले सर्प पड़ गया हो। वह मनुष्य भी चौंक कर एक पग पीछे हट गया। संतसिंह की स्त्री ने उसे देखकर बड़े आश्चर्य और उद्वेग से कहा,—"हीरा! तुम कहाँ से आगए? हाय! उनको कहाँ छोड़ आए?"

हीरासिंह के अश्रु-विन्दुओं में क्रोधाग्नि की चिंगारियाँ चमक रही थीं। उसने किशनचन्द की ओर देखकर दाँत पीसते हुए कहा,—"यह दुष्ट यहाँ कैसे आ गया?" किशन-चंद मुँह लटकाए हुए बैठे थे।

हीरासिंह कहता गया,—"राजाज्ञा द्वारा बहुत से लोग छोड़ दिए गए हैं। मालूम होता है यह भी मुक्त कर दिया गया। मुझे तो विश्वास हो गया है कि ईश्वर के यहाँ न्याय नहीं होता है। संतसिंह ने इसके साथ उपकार किया उसके प्राण हर लिए गए और यह दुष्ट अभी तक जीवित है।"



उसने घृणा से किशनचंद की ओर देख कर कहा,—"तुम क्या समझते थे किशनचंद ? अग्नि और पाप कहीं छिपे रह सकते हैं। तुम्हीं ने तो शिवनाथ बाबू का सर्वनाश किया। जो रहस्य पापी हृदय के अंधकार मय प्रदेश में छिपा रहता है वह भी मृत्यु की अन्तिम घड़ियों में पश्चात्ताप के प्रकाश में प्रगट हो जाता है। हैदर ने मरते मरते सब कुछ कह दिया। जिस प्रकार तुमने दरोगा हरसहाय से मिलकर शिवनाथ बाबू को फँसवाया था वह भंडा उसने फोड़ दिया। आह ! तुम इतने पतित हो, इतने अधम हो, मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता था।"

किशनचंद ने हीरासिंह के पैरोंपर गिर कर गिड़गिड़ाते हुए कहा,—"क्षमा करदो। हीरासिंह, क्षमा करदो। अब अधिक न कहो। अब यंत्रणा अधिक नहीं सही जाती है।"

हीरासिंह ने निष्ठुर बनकर कहा,—"तुम्हें पश्चात्ताप की अग्नि में जलते देखकर, मुझे आनन्द मिलता है। सुनो, अभी और सुनो। मैं उस दिन तुम्हारी हत्या करने गया था। क्या तुमने समझा था कि मुझे शिवनाथ ने भेजा था ? मूर्ख, तुम्हें दरोगा हरसहाय ने खूब धोखा दिया। तुमने समझा था कि मुझे शिवनाथ ने भेजा था ? मूर्ख, तुम्हें दरोगा हरसहाय ने खूब धोखा दिया। तुमने एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा कि क्या कभी शिवनाथ से ऐसा काम हो सकता है। परन्तु पापात्मा को तो सभी स्थान में अनिष्ट सूझता है।"

किशनचंद ने कहा,—"हीरा सिंह, दया करो उसका स्मरण न दिलाओ। मेरी इस अवस्था पर दया करो।"



हीरासिंह ने कहा,—"अभी तुमने क्या सुना है ? अभी ज़रा ठहरो तो ।"

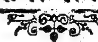
इतना कह कर उसने कमर से रुपए की थैली और कुछ नोट के बंडल निकाल कर दो स्थान पर रख दिये ।

उसने घूघँट वाली स्त्री की ओर देख कर कहा,—"शायद यह तुम्हारी स्त्री है । उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उन ढेरियों की ओर संकेत करके बोला,—"इसमें से एक ढेरी तुम्हारी स्त्री के लिए है और दूसरी संतसिंह की स्त्री के लिए । इसका देने वाला जानते हो कौन है, तुम्हारा मित्र जिसे तुम बैरी समझते थे शिवनाथ । तुम्हारी स्त्री की रक्षा करने वाला स्वामी विश्वेश्वरानन्द और कोई नहीं था शिवनाथ था । तीन वर्ष की सज़ा काटने के बाद शिवनाथ बाबू साधू हो गए थे । वे लाहौर से कुछ साथियों को लेकर यहाँ सेवासंघ स्थापित करके लोगों की सहायता किया करते थे । मरते समय उन्होंने मुझे एक काम सौंपा था, वह मैंने आज पूरा कर दिया । कुछ रुपया उन्होंने मुझे भी दिया है । मैं उसी को लेकर कहीं बाहर नौकरी की खोज में जाऊँगा । ईश्वर उस महान आत्मा को शान्ति दे ।"

हीरासिंह को दुःख का वेग अधिक हो गया था । संतसिंह की स्त्री, देवबाला और किशनचंद को यह रहस्योद्घाटन सुन कर काठ मार गया ।

किशनचन्द पागल की तरह हीरासिंह के पैरों में लिपट कर रोने लगे,—" मुझे क्षमा करदो, मुझे क्षमा करदो । "

हीरासिंह ने कहा,—" मैं क्षमा करने वाला कौन होता हूँ । शिवनाथ बाबू की आत्मा तुम्हें क्षमा करेगी । ईश्वर तुम्हें क्षमा प्रदान करेगा । "



संतसिंह की स्त्री ने कहा,—"हीरा, अब इनसे अधिक घृणा का व्यवहार न करो। ये अपने कर्मों के लिए घोर पश्चात्ताप कर रहे हैं। इनको इनके दुष्कर्मों का दण्ड भी मिल चुका है। इनके प्यारे पुत्र की प्यास से तड़प तड़प कर इनके सामने मृत्यु हुई है। इनकी हीन अवस्था पर दया करो।"

देवबाला ने रोकर कहा,—"हीरासिंह मेरे पति का अपराध भूल जाओ। उन्हें क्षमा कर दो। हमने जैसा किया, भर पाया। बस अब हम यही चाहते हैं कि हमें घृणा की दृष्टि से न देखो।"

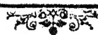
हीरासिंह को दया आ गई। उसने कहा,—"तुम्हें सच्चा पश्चात्ताप हो रहा है। ईश्वर तुम्हारे अपराधों को क्षमा करें।"

किशनचन्द ने कहा,—"इन रुपयों में मैं २५ हज़ार रुपए अपनी ओर से मिला कर शिव-सेवा-संघ के नाम से एक मन्दिर निर्माण करूँगा। वही मेरे मित्र का स्मारक रहेगा।"

उनकी इस प्रतिज्ञा को सुन कर हीरासिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मन ही मन कहा,—"इतना सुन्दर परिवर्त्तन।"

इसके बाद कुछ समय तक सब लोग चुप मौन रहे, फिर किशनचन्द ने कहा,—"हीरासिंह, तुम्हें हम लोगों के साथ कोठी में चल कर रहना होगा।"

हीरासिंह ने कहा,—"नहीं, मैं वहाँ न जाऊँगा। मेरा मन वहाँ न लगेगा।"



किशनचन्द ने कहा.—"थोड़े दिन तक चल कर रहो जब तबियत न लगे तो कहीं बाहर चले जाना।"

किशनचन्द के बहुत अनुरोध करने पर हीरासिंह उनके साथ रहने के लिए राजी हो गया।



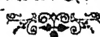
अट्ठाईसवाँ परिच्छेद।



किशनचंद के सुव्यवहार पर हीरासिंह इतना मुग्ध हो गया कि उसने बाहर जाने का नाम तक नहीं लिया। अब तो वह कोठी में एक किनारे रह कर बड़े आनंद से दिन काटता था, नए नौकरों पर अपनी हुकूमत चलाता था और कभी कभी पंडरी जाकर अपने पुराने मित्र गंगादीन से गप्पें लड़ाया करता था

शाम हो गई थी वह पंडरी से अभी नहीं लौटा था। लाला किशनचंद एक संगमरमर की मेज़ के आगे कुर्सी पर झुके हुए बैठे थे। वे बड़े ध्यान से शिव-सेवा-मंदिर का मानचित्र खींच रहे थे। सामने रक्खी हुई मोमबत्ती की शिखा हवा में काँप रही थी। कोठी के प्रांगण में संतसिंह की स्त्री बैठी हुई तरकारी बना रही थी। देवबाला पान का बीड़ा लगा कर मुस्कुराती हुई अपने पति को देने आई। किशनचंद ने सिर उठा कर पान लेने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि धड़ से किवाड़ खोल कर गोविन्द उनकी गोद में आकर बैठ गया। और उनका हाथ अपने हाथ में लेकर उनकी उँगलियों को दबाता हुआ कहने लगा,—"बाबूजी मुझे एक घड़ी ख़रीद दो।"

किशनचंद ने लड़के का मुंह चूम कर देवबाला से कहा,—"पुराना कैशबाक्स तो उठा लाना, उसमें एक घड़ी रक्खी है। निकाल कर दे दें।" गोविन्द दौड़ कर देवबाला के साथ जाने लगा। किशनचंद ने उसका कुरता पकड़ कर कहा,—"उसके साथ जाओगे तो मैं घड़ी नहीं दूँगा।"



गोविन्द ने कहा,—"अच्छा न जाऊँगा।" जब देवबाला बक्स लेने चली गई तो किशनचंद ने कहा,—"मास्टर साहब तुम्हारी शिकायत करते थे कि तुम पाठ नहीं याद करते हो।"

गोविन्द ने कहा,—"आप पाठ सुन लीजिए। मुझे सब याद है।"

यह कह कर वह पोथी लाने चला। किशनचंद ने कहा,—"अभी रहने दो! कल पूछूँगा।"

इतने में देवबाला बक्स उठा लायी। उसमें से घड़ी निकाल कर किशनचंद ने गोविन्द को दे दिया। आनन्द से गोविन्द का चेहरा खिल उठा।

बक्स में बहुत से काग़ज-पत्र रक्खे थे। किशनचंद ने एक को खोल कर देखा। यह 'राय साहबी' की सनद थी। गोविन्द ने उसे देखकर कहा,-"कितना सुंदर है मुझे देदो?"

किशनचंद ने उसका एक सिरा मोमबत्ती की शिखा से स्पर्श कर दिया। वह जलने लगा। जब अग्नि ऊपर को बढ़ने लगी तो उन्होंने उसे पृथ्वी पर फेंक दिया।

गोविन्द पैर पटकता, फू फू करता हुआ उसे बुझाने के लिए दौड़ा।

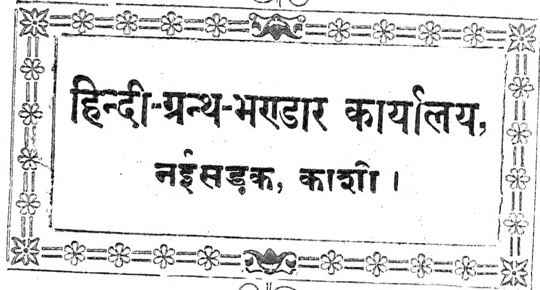
किशनचंद ने कहा,—"हँय हँय, उसे न छूना। जल जाओगे।"

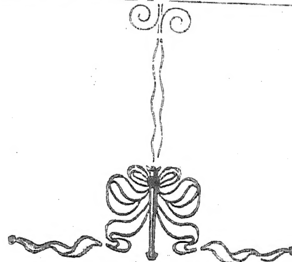


इतिशम्।









आदर्श प्रेस, काशी।